ध्यान साधना

- पं. अरुणविजय महाराज

प्रवचनकार एवं लेखक

प.पू.पंन्यास प्रवर श्री अरुणविजयजी गणिवर्य महाराज

(राष्ट्रभाषा रत्न,साहित्य रत्न (M.A.)न्याय दर्शनाचार्य (M.A.))

पूज्य श्री प्रसिद्ध सचित्र प्रवचनकार है,एवं सचित्र साहित्य के स
है। सात्विक एवं तात्विक सचित्र शैली की पूज्यश्री की अनेक पुस्तकें हि
गुजराती भाषाओं में प्रसिद्ध है। वर्षों से लोगों में पढी जा रही है। तत्त्वज्ञा
विविध विषयों का सचित्र साहित्य पठनीय-मननीय एवं संग्राह्य है।
साथ ही पूज्यश्री द्वारा संपादित प्रताकार आगमिक साहित्य पठनीय-मन
एवं संग्रहणीय है।

वीरालयम् एवं **श्री महावीर रिसर्च फाउण्डेशन** -पुणे..

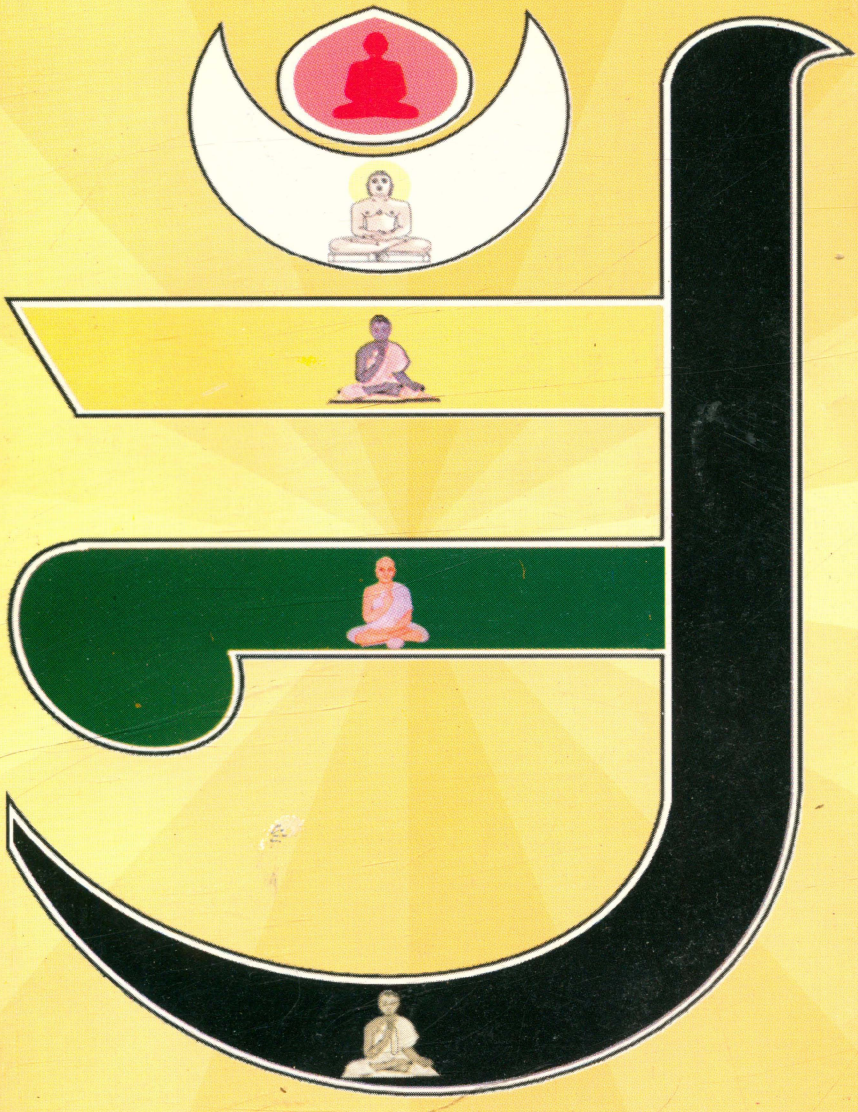

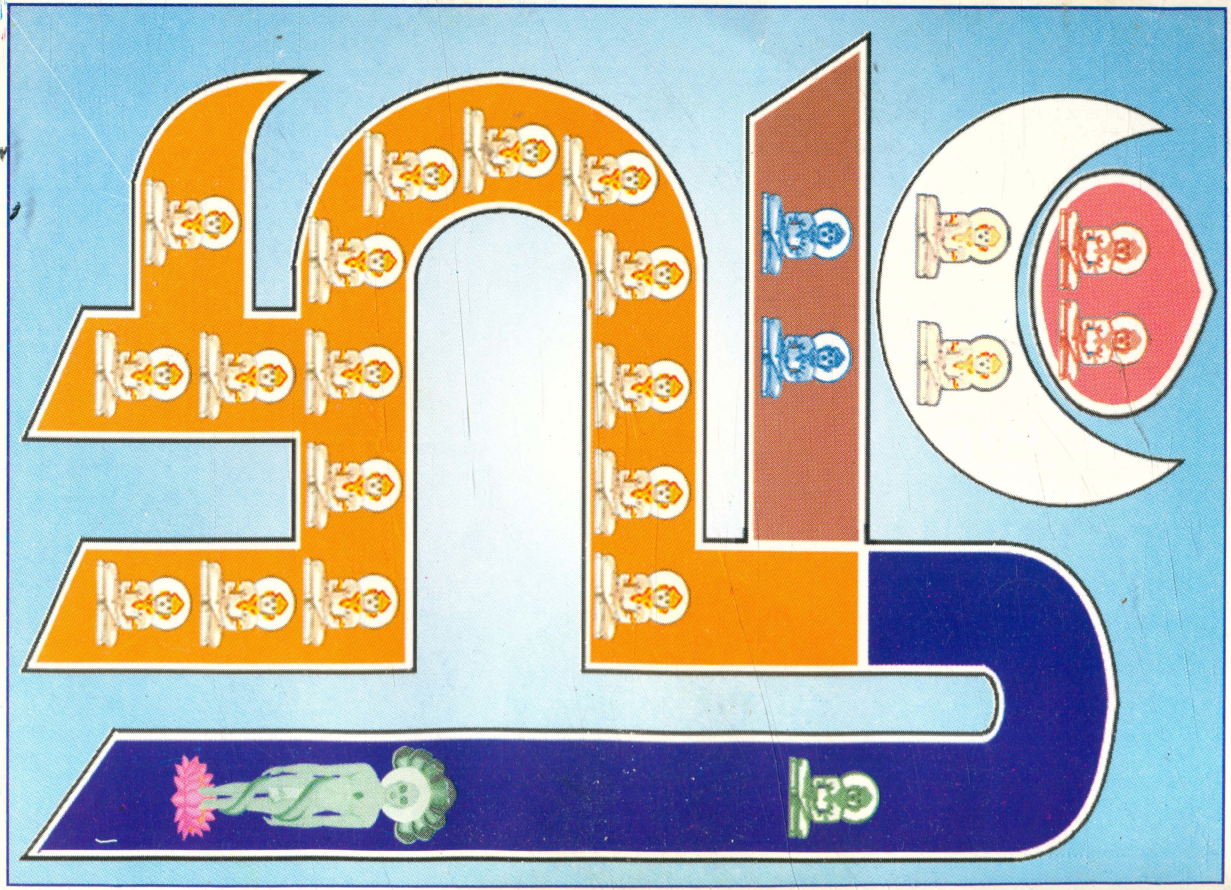

ाक्तामर-प्रणत-मौलि-मणि-प्र ाणा -
मुद्योतकं दलित-पाप-तमो-वितानम् ।
सम्यक्-प्रणम्य जिनपाद-युगं युगादा -
वालम्बनं ावजले पततां जनानाम् ।।

श्री नमस्कार महामंत्र का - अष्टदल कमलबद्ध - ध्यान

संसार रुपी सरोवर के कर्मरुपी जल में उगे हुए कमल के केन्द्रस्थ कर्णिका में नवकार के प्रथम पद की, फिर ४ मुख्य दिशाओ में ४ मंत्र पदों की, तथा विदिशाओं में चूलिका के ४ पदों की स्थापना करके इस तरह जल कमलवत् निर्लेप अनासक्ति भाव लाकर अष्टदल कमल बद्ध ध्यान करें।

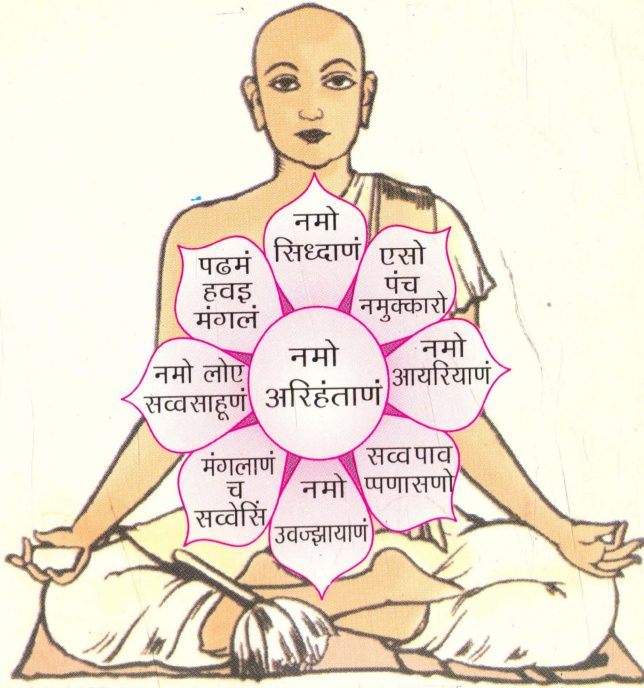

साधक स्वयं अष्टदल कमल की स्थापना अपने देह पर करे। हृदयरुपी सरोवर में खि
हुए कमल में अनाहत चक्र में प्रथम पद अरिहन्त की स्थापना केन्द्र में करके, विशुद्धि
चक्र कंठ तक सिद्ध पद की, नाभिकेन्द्र मणिपूर चक्र तक उपाध्याय पद की इस तर
चित्र के अनुसार अष्टदल कमल में नवकार की स्थापना करके ध्यान करिए

ध्यान साधना

पुस्तक नाम— ध्यान साधना भाग — १
लेखक— पंन्यास अरूणविजय गणिवर्य महाराज...
(राष्ट्रभाषा रत्न,साहित्य रत्न, M.A.,न्याय दर्शनाचार्य M.A.)
प्रूफ संशोधक— मुनि हेमन्तविजय महाराज तथा
श्री छगनलाल खं. ओसवाल(खिंवसरा)
प्रकाशक संस्था— श्री महावीर रिसर्च फाउण्डेशन ..वीरालयम्
११७७,शुक्रवार पेठ,मानमल कोठारी चौक,सुभाष नगर ,पूणे- २
आर्थिक सहयोग— श्री जैन ध्यान योग क्लास - दादावाडी के अभ्यासु शिक्षार्थी
तथा अन्यों के उदार सहयोग से प्रकाशित
वि.सं.२०५६. वीर सं. २५२६. इ.सं.२०००.
श्री महावीर जैन साहित्य सुमन- ४४ प्रथम आवृत्ति १००० प्रती.
किमत--सिर्फ ३६ रूपये।

अक्षर गमनिका - वीरालयम् कॉम्प्यु ग्राफिक्स...पूणे.

प्राप्ति स्थान---

श्री १०८ पार्श्वनाथ भक्ति विहार पो..शंखेश्वर .३८४२४६. ता.समी. जि. महेसाणा. फोन नं. — (०२७३३) ७३३२५.	नितीन र.पटणी,(फो.२०३७०९९) १६५ अमृतनिवास २ रा माला लुहार चाल ,प्रिन्सेस स्ट्रीट, मुंबई.४००००२.
सरस्वती पुस्तक भंडार ११२, रतन पोल, हाथीखाना अहमदाबाद-३८०००१.	महेन्द्र पेपर मार्ट (वीरालयम्) १०५६, शुक्रवार पेठ, तिलक रोड, पुना.२. फो.नं.४४७७९१७

पार्श्व प्रकाशन-निशा पोल,झवेरी वाड,रिलीफ रोड, अहमदाबाद-३८०००१.

प्रास्ताविकम्

आध्यात्मिक विज्ञान आधुनिक विज्ञान से अत्यंत श्रेष्ठतम है। आधुनिक विज्ञान यन्त्रों पर आधारित एवं आश्रित है। जड-अचेतन की शक्ति का मापक-ग्राहक एवं संशोधक है ,जबकि आध्यात्मिक विज्ञान आत्मानुभूति पर आश्रित एवं आधारित है। यह चेतनात्मा की शक्ति का मापक-ग्राहक एवं संशोधक है। आध्यात्मिकता,त्याग-वैराग्य की साधना से सुशोभित है। योग और उपयोग पर एवं योग-ध्यान की दिशा में प्रगतिशील है। आधुनिकता,भोग-उपभोग एवं साधनों पर गतिशील है। एक में मानसिक-आत्मिक शान्ति मिलती है। दूसरे में कायिक-शारीरिक,सामाजिक,आर्थिक समाधान मिलता है। जो राग-द्वेष संघर्षो और ईर्ष्या-अशान्ति दुःखों से भरा कंटकाकीर्ण मार्ग है। आध्यात्मिकता का मार्ग सुख-शान्ति, समता और संतोषादि गुणों का मार्ग है। कल्याणकारी है। आध्यात्मिकता में ध्यान करने का मार्ग है। एक में ध्यान करने का और दूसरे में ध्यान रखने का लक्ष्य है। कितना अन्तर है यह, तो सुज्ञ पाठक स्वयं ही समझ सकेगा।

इस वर्ष 'दादावाडी'पुना के चातुर्मास में 'ध्यान योग साधना' विषयक अखिल भारतीय स्तर पर द्वितीय अधिवेशन आयोजित किया था,तब यका यक मन में दिव्य संकेत हुआ कि, ध्यान की साधना सर्व सामान्य लोग भी कर सकें..इसके लिए कोई योग्य सही पुस्तक, दिशानिर्देश कर सके, वैसी तैयार करनी चाहिए। इस दिव्य संकेत को चरितार्थ करने हेतु संकल्प करके मानस बनाकर कलम चलाई। ९ से १० प्रकार के छोटे छोटे ध्यान के प्रयोग...जो कि प्रत्यक्ष अनुभूति के स्तर के थे, उन्हें पेपर पर अवतरित किया। ॐ ह्रीं के बीजाक्षर मंत्रों पर ध्यान कैसे करें? जो सबके लिए सुलभ एवं सुगम बन सके, वैसे सीधे सादे प्रयोग लिखे हैं। नवकार महामन्त्र,नवपद और अष्टदल-कमलबद्ध तथा सुप्रसिद्ध भक्तामर स्तोत्र के प्रथम श्लोक पर..जो प्रयोगानुभूति थी, उसे सभी लोगों को प्रदान करने का उदार मानस बनाया। बस इसीमें से, इस लघु पुस्तिका का जन्म हुआ है।'जो करे सो पावे' इस उक्ति -नुसार दिखने में भले ही छोटी लगनेवाली प्रस्तुत पुस्तक,प्रतिदिन साधक के जीवन में उपयोगी बनेगी। कर्मक्षयकारक-निर्जरालक्षी ध्यान है। अतः करनेवाला साधक कर्मक्षय करेगा। पाप धोकर आत्मशुद्धि करेगा। आत्मिक आनन्द की अनुभूति करेगा। उसमें मैं भी निमित्त का सहभागी बनुंगा। बस,यही शुभकामना है।

प्रार्थना करता हुं कि.. इस लघु पुस्तिका का सही उपयोग करके साधकवर्ग ध्यान साधना करें.. विविध प्रयोगों का उपयोग करे.. खूब अच्छी तरह ध्यान में जाएं..पाप धोते रहे,कर्मक्षय करते रहे,आत्मशुद्धि-आत्मशान्ति प्राप्त करते रहे, यही शुभ कामना करता हुं । जिनाज्ञा विरुद्ध अंशमात्र भी हो, तो अतःकरणपूर्वक क्षमा चाहता हुं। पाठक एवं साधकों के सुझाव स्वीकार्य-आवकार्य रहेंगे।

७आक्टो.२०००.
विजयादशमी - दशहरा

—अरुणविजय

प्रकाशक संस्था की कलम से...

सर्वोत्तम सत्साहित्य प्रकाशन करते रहने का हमारा एक सुंदर लक्ष्य है, और संकल्प भी है। यह प्रवृत्ति प्रतिवर्ष चलती ही रहती है। गत २०-वर्षों तक हमारी प्रथम संस्था 'श्री महावीर विद्यार्थी कल्याण केन्द्र' नें बम्बई से इस दिशा में काफी प्रगति की थी। 'श्री महावीर जैन साहित्य सुमन'की प्रवृत्ति के अन्तर्गत कई पुस्तकों का प्रकाशन किया था।

अब उपरोक्त संस्था दूध में शक्कर की तरह हमारी बडे पैमाने पर कार्यरत संस्था 'श्री महावीर रिसर्च फाउण्डेशन-वीरालयम्'में घुल मिलकर एक हो चुकी है। 'श्री महावीर जैन साहित्य सुमन' की प्रवृत्ति को इस संस्था ने आगे बढाने का जारी रखा है। एक के बाद एक उत्तम पुस्तके,आगमादि शास्त्र,ग्रन्थादि प्रकाशित करते रहते हैं। इसी श्रृंखला में प्रस्तुत लघुपुस्तिका **'ध्यान साधना'** प्रथम भाग प्रकाशित करते हुए हम गौरव अनुभव कर रहे हैं। प.पू.विद्वद्वर्य पंन्यास प्रवर **श्री अरुणविजयजी गणिवर्य महाराज** प्रतिवर्ष स्वहस्ते लेखन करते ही रहते हैं। कई ग्रन्थ संकलित एवं संपादित करते है। ज्ञानसेवा,ज्ञानोपासना करने का हमारी संस्था को यह सुवर्णावसर मिलता है,यह हमारा परम सौभाग्य है।

दादावाडी जैन टेम्पल ट्रस्ट के अन्तर्गत वि.सं.२०५६ के चातुर्मासान्तर्गत 'ध्यान-योग साधना' विषयक अखिल भारतीय स्तर पर द्वितीय अधिवेशन आयोजित किया था। इसी अवसर पर सर्व सामान्य लोगों को भी सीधे-सादे प्रयोगों के माध्यम से दैनंदिन जीवन में प्रतिदिन ध्यान-साधना की जा सके,इस उद्देश्य से पू.साधक पंन्यासजी श्री अरुणविजयजी गणिवर्य महाराज ने कलम चलाई। अपने व्यक्तिगत अनुभूत प्रयोगों को पुस्तकरुप में साकार करके, जन हितार्थ-परोपकारार्थ प्रसिद्ध करने का हमें सुवर्णावसर प्रदान किया, अतः हम कृतकृत्य है।

दादावाडी जैन टेम्पल ट्रस्टान्तर्गत चातुर्मास दरम्यान प्रतिदिन प्रांतःकाल चल रहा ध्यान-योग साधना क्लास में आनेवाले सभी साधक भाग्यशालियों ने तथा अन्य व

दाताओं ने ध्यान-योग की उपयोगिता समझकर प्रकाशनार्थ आर्थिक सहयोग दिया है,जिससे यह कार्य संभव हो पाया है।

वीरालयम् ट्रस्ट ने अपना कॉम्प्युटर विभाग खोला है। जिसे 'वीरालयम् कॉम्प्युग्राफिक्स' नाम दिया है । पू.मुनि श्री हेमन्तविजयजी महाराज के अन्तर्गत दो युवक नियमीत रुप से आगम शास्त्रादि ग्रन्थों का **(D.T.P.)** करते रहते हैं। उसमें इस पुस्तक का टाइप सेटिंग सुंदर हुआ । पू.मुनि श्री हेमन्तविजयजी महाराज तथा श्रीमान शा छगनलालजी खं.ओसवाल ने विशेष लक्ष रखकर प्रुफ संशोधनादि का सुंदर कार्य किया है,उसके लिए वे अभिनंदनीय है।

हमारा ट्रस्ट प्रस्तुत **'ध्यान साधना'** लघु पुस्तक का यह प्रथम भाग प्रकाशित करते हुए गौरव अनुभव करता है। आशा है, साधक वर्ग इसका आलंबन लेकर ध्यान-साधना में प्रगति करेंगे। कर्मक्षय, पापनाश करके आत्मशुद्धि करेंगे। साधकों-पाठकों के सुझाव आवकार्य रहेंगे।

वीरालयम् -पुना
विजयादशमी - दशहरा
७ आक्टो.२०००.

श्री महावीर रिसर्च फाउण्डेशन
वीरालयम् -ट्रस्टी गण..

oooooooooooooooooooooooooooooooooooooooooooooooooooooo

प.पू.पंन्यास श्री अरुणविजयजी गणिवर्य महाराज सा.

(राष्ट्रभाषा रत्न, साहित्य रत्न,एम.ए. ,न्याय दर्शनाचार्य एम.ए.)

की प्रेरक प्रेरणा सदुपदेश एवं मार्गदर्शनानुसार संस्थापित ट्रस्ट

वीरालयम्

के अन्तर्गत..महाराष्ट्र राज्य की सांस्कृतिक नगरी 'पुना 'शहर की सीमा पर

'श्री महावीर समवसरण ध्यान प्रासाद'

मान्यवर महोदय श्रीमान... ...

महाराष्ट्र राज्य की राजधानी मुंबई शहर से निकलता हुआ एन.एच. नं ४ के कात्रज बायापस हाईवे पर..पुना शहर की सीमा पर स्थित, कात्रज घाट की सुरम्य पर्वतमाला के बीच, प्रकृति की गोद में प्राकृतिक सौंदर्य से सुशोभित शान्त वातातरणवाले प्रदूषणमुक्त हवाखाने के सुंदर MINI HILL STATION स्वरूप ५० एकर की विशाल जमीन पर 'वीरालयम्' का विराट संकुल आकार ले रहा है। वास्तु शास्त्र के अनुसार बहुत ही उच्च गुणवत्तावाली इस भूमि पर, विश्व-यीय केन्द्र निमार्ण होने जा रहा है। सेवा,शिक्षा और साधना के त्रिवेणी संगम तीर्थ स्वरूप 'वीरालयम्' के विराट संकुल में जैन श्रमण संघ के जानेमाने विद्वान प.पू. **पंन्यास प्रवर श्री अरुणविजयजी गणिवर्य महाराज** सा. की गजब सूझ एवं प्रेरक प्रेरणा, सदुपदेश एवं मार्गदर्शनानुसार एक अनोखे प्रकार का विशाल ध्यान प्रासाद निर्माण हो रहा है,जिसका नाम है, **श्री महावीर समवसरण ध्यान प्रासाद ।**

बंसीपूर पहाड के गुलाबी पत्थर में विशुद्ध शिल्प शास्त्रानुसार बन रहा है। यह विशाल प्रासाद करीब १५० × १५० फूट चौरस विस्तार में वृत्त गोलाकार बनेगा। चारों दिशाओं में ४ प्रवेश द्वार होंगे। तीनों गढ के कुल मिलाकर १२ प्रवेश द्वार १२ सामरण युक्त चौकीओं से सुशोभित होंगे। सबसे उपर हरे रंग के मारबल के अशोक वृक्षाकार शिखर पर गगनचुंबी ध्वजा लहराएगी।

४४×४४ फूट के विशाल गभारे में १०८ इंच उंची विशाल ४ प्रतिमाजी चारों दिशाओं में बिराजमान होगी। एक -एक प्रतिमा के चारों ओर विशाल परिकर होंगे। कलात्मक परिकरों मे चौवीशी,वीशी तथा १०८ पार्श्वनाथ भगवान आदि होंगे। अशोकवृक्षादि अष्ट महाप्रातिहार्यों से सुशोभीत संपूर्ण एक मूर्ति की कुल उंचाई ३५ फुट होगी और ऐसी चार मूर्तियां चौमुखजी के रुप में बिराजमान होगी। यह सारा समवसरण चतुर्मुख प्रासाद के रुप मे सुशोभीत होगा।

चारों दिशाओं मे अन्दर पिरॉमिड आकार की ध्यान-साधना की देवकुलिकाएं-देरिया बनेगं.। साधक स्वयं ध्यान साधना करने इसमें बैठेंगे। इस प्रकार एक अनोखे ध्यानप्रासाद की रचना हो रही है।

'वीरालयम्' **VEERALAYM** नाम से ट्रस्ट पुना में रजिस्टर्ड है,जिसका रजिस्ट्रेशन

नं.**E-2697** है। हिसाब-किताब सब कॉम्प्युटर पर सुव्यवस्थित है। दाताओं को व्यवस्थित पक्की रसीद तुरंत ही जाती है। बम्बई,पुना आदि के प्रतिष्ठित लोग ट्रस्टी के रुप में सेवा प्रदान कर रहे हैं।

oooooooooooooooooooooooooooooooooooooooooooooooooooo

प.पू.पंन्यास श्री अरुणविजयजी गणिवर्य महाराज —

की प्रेरक सदुपदेश एवं मर्गदर्शनानुसार सेवा.. शिक्षा और साधनाके त्रिवेणीसंगम स्वरुप विश्वस्तरीय 'JAIN CENTRE - जैन सेंटर' के रुपमें संस्थापित —

SHREE MAHAVEER RESEARCH FOUNDATION

भारत देश के महाराष्ट्र राज्य की राजधानी मुंबई पुना के N.H.No.4 पर कात्रज बायापास पर पुना शहर के सीमावर्ती कात्रज घाट की सुरम्य पर्वतमाला के बीच पहाडी पर..पहाडीयों के बीच..प्रकृति की गोदमें.. प्राकृतिक सौदर्य से सुशोभीत शान्त वातावरण वाले प्रदुषण मुक्त हवा खाने के रमणीय स्थान MINI HILL STATION स्वरुप 'वीरालयम्' की ५० एकर विशाल जमीन पर विश्वस्तरीय विशाल संकुल निर्माण हो रहा है।

'श्री महावीर रिसर्च फाउण्डेशन' नामसे रजिस्टर्ड ट्रस्ट के अन्तर्गत विविध आयोजनो की संकल्पना की है। ८० जी. नियमानुसार आयकर विभाग से कममाफी पत्र प्राप्त इस ट्रस्ट का रजिस्टर्ड न.E--2683. बैंक ऑफ बरोडा में खाता है। कॉम्प्युटर पर

सुव्यवस्थित हिसाब०किताब है। दाता को तुरंत पक्की रसीद दी जाती है। सर्व लक्षी कार्यों की योजना निम्न प्रकार से रखीहै।

ध्यान साधना केन्द्र⇨ **Yoga Research Centre, Research Institute, Research Library , Alternate Therapies Medical Centre, Teaching Traning & Treetment Centre , Hospital , Hostels, Residential School & Collage** शान्ति निकेतन, अतिथि गृह अंधमूक,बधीर विकलांग शाला, मद्रणालय ,तीर्थकर उद्यान, नक्षत्र वन, आरोग्य केन्द्र, आदि अनेकविध आयोजनों का क्रमशः एक के बाद एक का निर्माण करने का मानस है।

यत्रिकालयाम् ,विशाल भोजनशाला , Sanatorium एवं साहित्य प्रकाशन ।

इसकी विस्तृत जानकारी योजनावाले स्वतंत्र साहित्य पढने से पूरा ख्याल आएगा।

'वीरालयम् परिवार की सदस्य योजना' ⇨ शुभ कार्य में सहयोगी बनने के लिए यह योजना बनाई है। जी..हां.. आप भी 'वीरालयम् परिवार के सहयोगी सदस्य' अवश्य बनीए। पधारीए..स्वागत है आपका ।विविध आयोजनों में आप सहयोगी बनकर.. पुण्य के सहभागी बनें। आइए..पधारिए.. हम और आप सब मिलकर जैनशासन का अभ्युदय साधें। एक सुनहरा स्वप्न साकार करे। एक नए भवीष्यका सर्जन करें।एक नया इतिहास सर्जे।

ooooooooooooooooooooooooooooooooooooooooooooooooooooooo

निवेदन

कृपया जिस विषय का ध्यान करना हो, उसे प्रथम दो-चार बार अच्छी तरह पढकर अवधारण कर लीजिए,ताकि ध्यान करने के समय आप स्वयं कर सकें। बार बार के अभ्यास से ही सफलता मिलती है।

प.पू.पंन्यास श्री अरुणविजयजी गणिवर्य महाराज

की प्रेरक प्रेरणा,सदुपदेश एवं मार्गदर्शनानुसार — जोधपुर-मुंबई-पुना-मद्रास और बैंगलोर आदि शहरों में जैन समाज के साधर्मिकों की सेवार्थ कार्यरत संस्था—

श्री महावीर जैन साधर्मिक कल्याण केन्द्र

साधर्मिक बंधुओं की सेवा-भक्ति-वात्सल्य और उनके उत्थानार्थ सहयोग को जैन शास्त्रों में काफी महत्व दिया गया है। पूज्य श्री की प्रेरणानुसार विगत २० वर्षो से संस्थापित यह संस्था समाज की सेवा कर रही है। गत १० वर्षो से पुना में सक्रिय है।

जैन साधर्मिक परिवारों को आर्थिक सहयोग प्रदान करते हुए उन्हें उपर उठाना.

स्थायी व्यापार कराना,कोर्स कराना,नोकरी पर लगाना,शैक्षणीक सहयोग, वैद्यकीय सहयोग, साहित्य सहयोग, गणवेश सहयोग,महिला उद्योग सहयोग,व्याज रहित लोन सहयोग,धार्मिक सहयोग,विधवा सहयोग

आदि अनेक तरीकों से सहयोग करते हुए जैन साधर्मिक बंधुओं एवं परिवारों का उत्थान करने का कार्य करते है।आवश्यक्ता वालों को आवास निवासार्थ एक-एक घर एवं दुकान देने हेतु कात्रज घाट में बन रहे 'वीरालयम्' के विशाल संकुल में—

दुकानों और १०८ घरों सहित 'श्री महावीर जैन साधर्मिक नगर' का निर्माण चल रहा है। जिसमें १० दुकानों और २८ घरों वाला प्रथम युनिट बनकर तैयार हो चुका है।

८० G नियमानुसार करमाफी पत्र प्राप्त कर यह संस्था पुना शाखा के रुप में स्वतंत्र रजिस्टर्ड है। ट्रस्ट रजि.न.E - 28001. है। बैक में खाता है। तथा हिसाब-किताब सुव्यवस्थित है। दाताओं को पक्की रसीद तुरंत दी जाती है।

ट्रस्टी मंडल

विश्व कल्याण प्रार्थना

शिवमस्तु सर्व जगतः ,पर हित निरता भवन्तु भूतगणाः ।
दोषा प्रयान्तु नाशं, सर्वत्र सुखी भवन्तु लोकाः ।।

— समस्त विश्व का कल्याण हो, सभी प्राणी परहित-परोपकार करने में रत बनो, सभी के पाप दोष नष्ट हो, सर्वत्र सभी लोक सुखी हो।

oooooooooooooooooooooooooooooo

सर्वेपि सन्तु सुखिनः, सर्वे सन्तु निरामया ।
सर्वे भद्राणि पश्यन्तु ,मा कश्चिद् दुःखमाप्नु यात् ।।

— सभी जीव सुखी बनो, सभी जीव निरोगी बनो। सभी कल्याण को देखो, कोई भी जीव दुःखी न बनो।।

oooooooooooooooooooooooooooooo

मा कार्षीत कोपि पापानि, मा च भूत कोपि दुःखिनः
मुच्यतां जगदप्येषां, मति मैत्री निगद्यते ।।

— कोई भी जीव पाप न करे , कोई भी जीव दुःखी न हो, संपूर्ण जगत् कर्म मुक्त बनो, ऐसी ही मति मैत्री भावना है।

oooooooooooooooooooooooooooooo

नन्दन्तु सर्वभूतानि, स्निहयन्तु विजनेष्वपि ।
स्वस्त्यस्तु सर्वभूतेषु, निरातङ्कानि सन्तु च ।।

— प्राणीमात्र आनन्दित हो, शत्रुओं पर भी स्नेह भाववाले बनो, सबका कल्याण हो। सभी निरोगी बनो।।

oooooooooooooooooooooooooooooo

मा व्याधिरस्तु भूतानामाधयो न भवन्तु च ।
मैत्रीमशेष भूतानि, पुष्यन्तु सकले जने ।।

— किसी भी प्राणी को व्याधि न हो, मानसिक चिन्ता ही न हो, समस्त प्राणीमात्र के साथ मैत्री भाव बढाते ही रहो।

'ध्यान साधना' पुस्तक प्रकाशन में सहयोगी

श्री दादावाडी जैन ध्यान०योग क्लासके शिक्षार्थी एवं अन्य दाताओं की सूचि

❁ श्री वासंतिबाई अनराजजी मुथा
❁ श्री मति शांताबेन गुलाबचंदजी जैन
❁ श्री पोपटबेन रमणलाल पोरवाल
❁ श्री विजयराजजी वालचंदजी रांका
❁ श्री किरणराजजी वसंतराजजी ललवाणी
❁ श्री मांगीलालजी ग.बाफना
❁ श्री यु.जे.सोलंकी
❁ श्री शीतलकुमार पोपटलाल गांधी
❁ श्री कनैयाबाई बाबुलालजी पोरवाल
❁ श्री नेमिचन्दजी दानलजी (हस्ते महेन्द्र जैन)
❁ श्री शांतीलाल बाबुलालजी निबजीया
❁ श्री अशोक मणिलाल कोठारी
❁ श्री नविनचन्द्र प्रभुदास पारेख (पारेख फार्मास्युटीकल्स)
❁ श्री कान्तिलाल फतेचंदजी छाजेड
❁ श्री रमणीबाई ओसवाल
❁ श्री प्रतापचंदजी भलेचंदजी शाह
❁ श्री प्रकाश पुखराजजी ओसवाल (प्रकाश डिस्ट्रिब्युटर्स)
❁ श्री देवीचंद चुनिलालजी कोठारी (मिलन प्लायवुड)
❁ श्री शांतीलाल बाबुलालजी जैन (श्री नागेश्वर स्टील)
❁ श्री पुखराजजी भगवनदासजी जैन.
❁ श्री मति हंसाबेन राजुभाई चोखावाला.
❁ श्री मति निलिमाबेन बी.शाह.
❁ श्री मति हिराबेन नाथालाल बाटवीया.
❁ श्री पारसमल वस्तीमलजी कुंकुंरोल.
❁ श्री चंपालालजी हिराचंदजी चंदालीया.
❁ श्री मति सुशीलाबेन रमणिकसास दोशी.
❁ पूनम प्रिन्टिंग प्रेस-- ह.संपतजी.

— विनंति —

ध्यान-साधना पुस्तक के प्रथम भाग में दर्शाए गए ध्यानके विभिन्न प्रयोगों को सर्व प्रथम २ - ४ बार शान्ति से ध्यान पूर्वक पढ़ीए .. अच्छी तरह से समझ लीजिए .. कि क्या करना है ?.. कैसे करना है ? मन में अवधारणा कर लीजिए , फिर करना शुरु करीए । एक बार में एक ही प्रयोग करीए । दूसरी बार दूसरा प्रयोग ।

आसन - प्राणायाम का अभ्यास पहले से साध रखिए । उसके पश्चात् धारणा-ध्यान की कक्षा आएगी । विशिष्ट ध्यान में जाने के पूर्व ... भावना योग के अभ्यास से मन को भावित कर लीजिए , फिर ध्यान में जाइए । यदि , ध्यान से विचलित हो जाएं , तो पुनः भावना योग के अभ्यास से मन को भावित कर के पुनः ध्येय के अनुरुप विषय का अनुसन्धान जोडीए ..और ध्यान की धारा आगे बढ़ाइए ।

पुनः पुनः का अभ्यास ही साधक को पूर्णता की तरफ अग्रसर करता है । अभ्यास साध्य ध्यान है ।ज्ञान - योग पूर्वक ही ध्यान - योग में प्रवेश - प्रगति विशेष होती है।

कुछ दिनों के अभ्यास पश्चात् प्राथमिक कक्षा से ऊपर उठने के बाद .. ध्यानानुभूति में .. आनन्द का विशेष अनुभव होगा । याद रखिए .. जितना आनन्द विशेष ज्यादा होगा, उतनी निर्जरा ज्यादा होगी,कर्मक्षय-पाप नाश ज्यादा होगा। बस यही साध्य है।

ध्यान साधना भाग ..२

प्रथम भाग के प्रयोगों का भलि भांति अभ्यास हो जाने के पश्चात् **'ध्यान साधना'** पुस्तक के दूसरे भाग का अभ्यास शुरु करीए । जी.. हां.. यह पुस्तक भी कहानी किस्से की तरह मात्र पढ़ने की नहीं.. अपितु तदनुसार अभ्यास करने के लिए हैं । अतः धीरज रखकर .. समझते हुए .. क्रमशः आगे बढ़ीए ।

प.पू.विद्वद्वर्य पंन्यास प्रवर श्री अरुणविजयजी म.सा.

—द्वारा लिखित पढने योग्य सात्विक साहित्य—

कर्म तणी गति न्यारी	गुज. भाग १ और २
पाप की सजा भारी	हिन्दी भाग १ और २
सचित्र गणधरवाद	(गुज) भाग १ और२
भावना भव नाशिनि	(गुज) भाग १
कर्म की गति न्यारी	(हिन्दी) भाग १ और २
नमस्कार महामंत्र का अनुप्रेक्षात्मक विज्ञान	(हिन्दी) भाग १
पाप नी सजा भारी	(गुज) भाग १ और २
नवकार स्मारिका	स्मारिका नवकार लेख संग्रह
नमस्कार महामंत्र नुं अनुप्रेक्षात्मक विज्ञान	गुज. भाग१
महावीर स्तवनावली ,	❋ १०८ पार्श्वनाथ स्तवनावली
प्रमाणनय तत्त्वालोक	संस्कृत - हिन्दी
ज्ञानार्णव - ज्ञानबिन्दु	संस्कृत प्रत
उपासक दशांग सूत्र	आगम प्रत
विपाक सूत्र	आगम प्रत
निरयावलिका सूत्र	आगम प्रत
जीवाभिगम सूत्र	आगम प्रत भाग १,२
पन्नवणा सूत्र	आगम प्रत भाग १,२,३
भगवती सूत्र	आगम प्रत भाग १,२,३
आध्यात्मिक विकास यात्रा	(हिन्दी) भाग-१,२,३.
ध्यान साधना	(हिन्दी) भाग-१.

श्री १०८ पार्श्वनाथ भक्ति विहार पो..शंखेश्वर .३८४२४६. ता.समी. जि. महेसाणा.फो.न (०२७३३)७३३२५.	नितीन र.पटणी, फोन.२०३७०९९ १६५ अमृतनिवास २ रा माला लुहार चाल ,प्रिन्सेस स्ट्रीट, मुंबई.४००००
सरस्वती पुस्तक भंडार ११२, रतन पोल, हाथीखाना अहमदाबाद-३८०००१.	महेन्द्र पेपर मार्ट (वीरालयम्) १०५६, शुक्रवार पेठ, तिलक रोड, पुना.४११००२ फोन.नं. ४४७७९१७

पार्श्व प्रकाशन-निशा पोल,झवेरी वाड,रिलीफ रोड, अहमदाबाद-३८०००१.

ह्रीं बीजाक्षर में २४ भगवान का ध्यान

मंत्र शास्त्र में ॐ कार के बाद ह्रीं कार का स्थान है । अक्सर सभी मन्त्रों के साथ जुडने वाला यह ह्रीं बीज मन्त्र है। ह्रीं कार के यन्त्र भी हैऔर मन्त्र भी है । इस ह्रीं कारमें २४ तीर्थंकरो की स्थापना की गई है।"ऋषिमण्डल " स्तोत्र जो कि काफी सुप्रसिद्ध है , महान प्रभाविक है । इसी ऋषिमण्डल का महान पूजन भी पढाया जाता है । प्राचीन ऐतिहासिक काल में इस जगत के सर्वश्रेष्ठ ऋषि-महर्षि अगर कोई हो तो २४ तीर्थंकर ही है। इनमें ऋषभदेव भगवान से २४ वें श्रमण भगवान महावीर स्वामी तक के २४ तीर्थंकर भगवान हुए हैं। जो वर्तमान चौबीसी के २४ भगवान है। जैसे अजितशान्ति स्तोत्र में मुनि-महामुनि, तपस्वी आदि की अनेक उपमाएं दी गई है । इसी तरह भक्तामरादि नौं स्मरण में , स्तोत्रों में तीर्थंकर भगन्तों को ऐसी अनेक उपमाओं से संबोधित किया गया है। वैसे ही ऋषिमन्डल स्तोत्र में २४ तीर्थंकर भगवन्तों को जगत् के चरम कक्षा के महान ऋषि-महर्षि कहे गए हैं , और इन २४ को एक बीजाक्षर ह्रीं कार में स्थापित किये हैं । जो चित्राकृति में दिखाए गए हैं। ऐसे ह्रीं कार को भी एकाक्षरी महामन्त्र कहा गया है। " ह्रीं नमः" या ॐ ह्रीं नमः "के मंत्र का जप स्मरण करना चाहिए । इन दोनों बीज मंत्रों के आगे 'नम' शब्द जोडकर मंत्र बनाकर जप करना चाहिए। जप में संख्या प्रधान रहती है। ध्यान में स्थिरता - एकाग्रता प्रधान होती है। जप में सिद्धि निर्धारित संख्या में जप होने के पश्चात् मिलती है। ध्यान में जिस क्षण स्थिरता -एकाग्रता बनती है । वह जितनी देर रहती है उतनी ही देर तक कर्म क्षय-निर्जरा होती ही रहती है। ध्यान वर्तमान कालीन फलदायी है। जप भविष्यकालीन फलदायी बनता है। जप की अपेक्षा से भी ध्यान साधना अनेक गुनी फलदायी है। कर्म क्षय-निर्जरा से आत्मशुद्धि होती है। इससे बडी सिद्धि और क्या हो सकती है ? इसलिए जो साधक कर्मक्षय प्रमाण में ज्याजा और अल्प काल करना चहते हो उनको ध्यान ज्यादा करना चाहिए । ध्यान में जाने के लिए प्रवेश द्वार समान जप है , और पुनः बाहर निकलते समय भी जप के प्रनेश द्वार से ही बाहर निकलना लाभदायी है।

प्रक्रिया ☛ अङ्ग-वस्त्र-भूमि आदि ७ शुद्धियों का व्यवहारिक पालन पहले करीए । जी...हां... शुद्धियां ...शुद्ध साधना में काफी उपयोगी होती है। और मन के शुद्धिकरण पर भी अपना सहयोग प्रदान करती है । प्रभाव डालती है। आलंबन ☛ सामने ह्रीं कार का सुंदर चित्ताकर्षक मनमोहक चित्र पट्ट रखें । चाहें तो धूप दीप रखें पट्ट या यन्त्र की स्थापना करें ।

स्तोत्र पाठ ☛ सर्वप्रथम चित्रपट्ट के सन्मुख स्तुति करके , ३बार खमासमणें देवें । ऋषिमण्डल स्तोत्र का पाठ करें । ३ बार लोग्गस्स सूत्र हाथ जोडकर बोलके हुए नमस्कार करें। मंत्र जाप ☛ १) ऋषिमणडल का मूलमन्त्र का जप करें । कम से कम १ या ३ माला १०८ की गिनें । २) उपर दिये छोटे मंत्रों की कम से कम ३ माला का जप करे । आसन ☛ ऊनी - गरम आसन पर शुद्ध वस्त्र धारण कर , अर्ध या पूर्ण पद्मासन में स्थिर बैंठें। आसन अप्रमत्त भाव के लिए काफी उपयोगी सिद्ध होता है। भगवान मूर्ति की तरह दोनों हाथ रखें। (बाएं हाथ की हथेली पर दाएं हाथ की हथेली रखें)या फिर दोनों हाथ दोनों घुटने पर रखें। । अंगूठे से प्रथम अंगुली का चक्र दबाकर हाथ संपूर्ण सीधे रखें। नेत्र पटल ☛ आंखें बंद रखना ज्यादा आराम दायक लगता है, या नासिकाग्र दृष्टि स्थिर करं या ह्रीं कार चित्रपट्ट पर दृष्टि केन्द्रित करें प्रायः जप के समय चित्रपट्ट पर या यन्त्र पर स्थिर रखें। ध्यान में दृष्टि बंद रखना लाभदायी है। प्राणायाम ☛ पहले ५ बार लम्बी गहरी श्वास लीजिए । बहुत ही धिरे-धिरे श्वास लेनी चाहिए । फेफडो में पूरी भर जानी चाहिए । छोडना भी बहुत ही धिरे-धिरे चाहिए । ध्यान ☛ धिरे-धिरे श्वास पर केन्द्रित होते जाइए । मन शान्त होता जाएगा । हृदय कमल पर ह्रीं कार का चित्र उपसाइए ।(बंद आंखों से) अन्दर ही अन्दर मानसचित्र स्पष्ट करते जाइए । जो और ज्यादा अधिक-अधिकतर स्पष्ट होता जाय । चमकदार चमकीला होता जाय, और विशाल बडाबडा बनता ही जाय । अब जिस क्रम से ह्रीं कार में २४ तीर्थंकरों की स्थापना की गई है आप एक एक तीर्थंकर के क्रमशः दर्शन करते ही जाएं । मूर्ति में नीचे अंकित लांछन (चिन्ह) को देखते हुए उन उन तीर्थंर भगवान का नाम लेकर, चतुर्थी विभक्तिलगाकर आगे ॐ ह्रीं श्रीं (भगवान का नाम) और अन्त में मनः शब्द जोडकर मन्त्र बनाते हुए भाव पूर्वक मानस

नमस्कार करते हुए आगे बढीए । इसी क्रम से ह्रीं कार में जहां जो भगवान है वहीं स्थिर रहकर पूर्ण रूप से स्पष्ट दर्शन करते हुए मंत्र से नमस्कार करते हुए क्रमशः आगे बढते हुए चौबीसों तीर्थंकर भगवान के दर्शन-नमन करते रहीए ।

जी... हां... काया आसन में स्थिर है । आँखें बंद है । सिर्फ मन ही अन्दर यह कार्य कर रहा है । मानस प्रक्रीया अन्दर चल रही है। दर्शन मन्त्र पूर्वक नमस्कारादि (बिना जीभ,होठ हिलाए) मात्र मानसिक स्तर पर ही चलता रहे । जैसे ही चौबीसों भगवान के दर्शन नमनादि पूर्ण हो जाय ... फिर कुछ क्षण पर हृदय कमल में स्थित ह्रीं कार चित्र पट्ट देखते ही रहें (बंद आंखो से) और उसमें से निकलते हुए तेज को देखते रहें। फिर (बंद आंखो से) सामने के चित्र पट्ट को देखते रहें। मानों चमकते हुए सहस्रकिरणवाले सूर्य के तेज की तरह नँ ह्रीं कार के चारों तरफ तेजोवलय दिखाई दे। उसकी किरणें और तेज होती हुई दिखाई दे। आकाश में जैसे सहस्रकिरण-सूर्य दिखाता है ठीक वैसे ही ह्रीं कार तेजोवलय युक्त चमकता हुआ मानस पटल पर दिखाई दे। उसमें अंकित चौबीसों तीर्थंकर परमात्मा की मूर्तियां हीरे की तरह चमकती हुई तेजस्वी स्वरूप में दिखाई दे, और वे भी स्व स्व वर्ण वाली दिखाई दे। दो लाल दो हरे वर्णवाली, दो श्याम, दो शवेत-उज्वल वर्ण युक्त शेष १६ सुवर्ण वर्ण वाली इस प्रकार दिखाई दे। इतना ज्यादा स्पष्टीकरण हो तो और भी अच्छा ... रोमान्च का अनुभव करीए ।

बस, धिरे धिरे पुनः अपनी स्वाभाविक श्वास पर आइए ... कुछ देर ... नासिकाग्रे मन स्थिर करके मात्र श्वास के आवागमन को देखते रहीए । स्पर्श का अनुभव करते रहीए ।

पुनः दीर्घ श्वास शुरू करीए । लम्बी गहरी श्वास लेते जाईए । पूरे शरीर में श्वास से चेतना फैलती जाएगी । बस सिख ५ दीर्घ श्वास लीजिए।

दोनों हाथ उठाकर - हथेली रगडते हुए ..आंखो पर ...चेहरे पर घूमाते हुए ... आनन्दित हसमुख चेहरे के साथ आंखें खोलीए । हाथ जोडकर सन्मुख रखे ... ह्रीं कार चित्रपट्ट के दर्शन करीए , और ळ नमः का जाप १०८ बार करीए ।

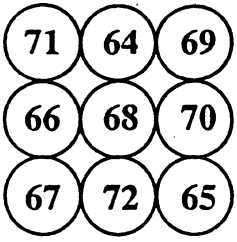
71 64 69
66 68 70
67 72 65

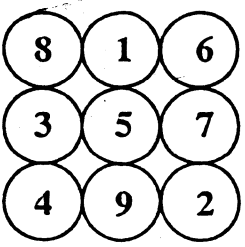
8 1 6
3 5 7
4 9 2

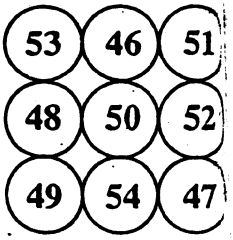
53 46 51
48 50 52
49 54 47

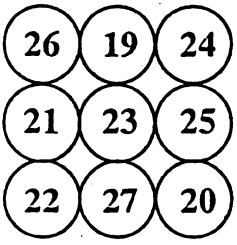
26 19 24
21 23 25
22 27 20

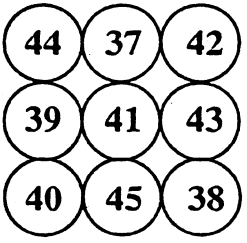
44 37 42
39 41 43
40 45 38

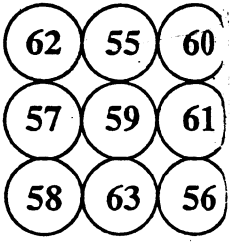
62 55 60
57 59 61
58 63 56

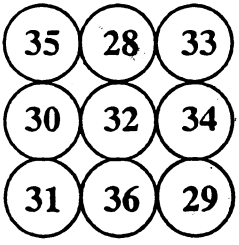
35 28 33
30 32 34
31 36 29

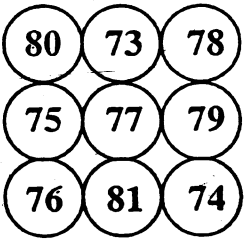
80 73 78
75 77 79
76 81 74

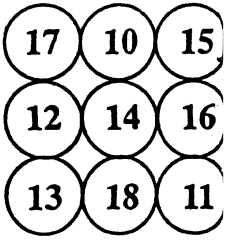
17 10 15
12 14 16
13 18 11

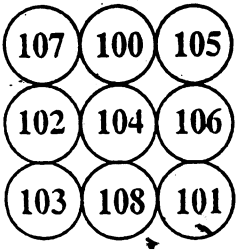
107 100 105
102 104 106
103 108 101

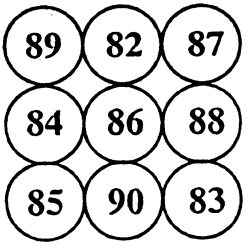
89 82 87
84 86 88
85 90 83

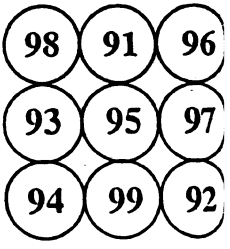
98 91 96
93 95 97
94 99 92

मन्त्रमय नवकार का यन्त्रमय जापे

यन्त्रमय पद्धति से १०८ नवकार क्रमशः गिनीए ।

जप करते समय संख्या की प्राधान्यता रहती है। ध्यान में संख्या नहीं रहती। संख्यागणना हेतु माला रखी गई है।अरिहन्तादि पांचों परमेष्ठी भगवन्तों के गुण अरिहन्त के १२, सिद्ध के ८, आचार्य के ३६, उपाध्याय के २५, और साधु के २७ गुण होते हैं। सब मिलाकर १०८ गुण होते हैं,इसीलिए माला में १०८ ही मणी होते हैं। कम भी नहीं और ज्यादा भी नहीं।

१०८ मणीयों की माला हाथ में लेकर भाष्य जाप करना आसान है। लेकिन,मन घूमता रहता है,क्योंकि हमने मन को कोई काम नहीं दिया है। अतःमन को भी थोडी कसरत करानी आवश्यक है। इसके लिए यन्त्रमय पद्धति अपनाना लाभदायी है।

एक से लेकर क्रमशः १०८ तक की संख्या को लिखना है। नवपदजी के नौं खानों की तरह या अष्टदल कमलबद्ध पद्धति के आठ पंखुडीवाले कमल की तरह दलों की दिशा विदिशा में,तथा केन्द्र में व्यवस्था करके उसमें १ से ९ तक के अंकों की संख्या इस तरह लिखिए,जिसके तीन खानों की जोड किसी भी दिशा विदिशा से करने पर कुलांक १५ ही आए। इसे पंदरिया यंत्र कहते हैं। जैसा कि सामने चित्राकृति में स्पष्ट दिया है। जैसा इस प्रथम बोक्स में अंको को जिन दिशा विदिशाओं में लिखा गया है। वैसे ही मूल दिशा तथा विदिशा में स्वतंत्र नौं बोक्स बनाईए । इन नौं में प्रत्येक बोक्स और ऐसे नौं नौं खाने हो। अष्टदल कमलात्मक नौं खाने हो, ऐसा एक बोक्स और ऐसे नौं बोक्स हो। आप क्रमशः १ से खानों के क्रम की तरह लिखिए।

८१ वे खाने के ही नीचे ठीक ८२ वा खाना आएगा यह दसवां बोक्स भी नौं खानों वाला होगा। इसमें ८२ से ९० तक की संख्या-अंक लिखें। ठीक इसके बगल में १० वे खाने के बांई तरफ बगल में संख्या क्रमशःलिखें और इसी तरह १० वें बोक्स के दाहिनि तरफ अंतिम १२ वा बोक्स बनाइए। उसके भी नौं खानों में १०० से १०८ तक की अंक संख्या क्रमशः लिखिए। इस तरह १२ बोक्सों में नौं नौं खानों में क्रमश १ से लेकर

१०८ तक की अंक संख्या समाएगी। गणितानुसार १२ +९=१०८ ही होंगे १ कम भी नहीं और एक ज्यादा भी नहीं होंगे।

प्रत्येक की यंत्रमय व्यवस्था इन १२ बोक्सों में क्रमानुसार लिखि गई नौं नौं खानों की संख्या का जोड कुलांक निश्चित ही आएगा। और वह भी चारों दिशाओं एवं विदिशाओं में तथा सीधी खडी लाइन या आडी लाइन में कहीं से किसी भी तरह तीन-तीन खानों की संख्या की जोड करने पर एक निश्चित ही संख्या आएगी। गणितीय दृष्टि से यह भी एक गणित का चमत्कार कहा जाता है। क्रमशःदो खानों की जोड संख्या के अंक यहां इस तरह है। प्रथम बोक्स में चारों तरफ की कुल जोड १५ का अंक है। इसी तरह दूसरे, तीसरे, चौथे ऐसे बारहवे बॉक्स में चारों तरफ का तीन तीन खानों की अंक का जोड अनुक्रमे ४२,६९,९६,१२३,१५०,१७७,२०४, २३१, २५८,२८५ और ३१२ आता है।

इस तरह बारह ही बोक्स के बारह प्रकार के यन्त्र बनते है। इन यंत्रों का अपना अपना विशिष्ट महत्वपूर्ण स्थान है। गणितीय प्रभाव से युक्त है।

आप तो सिर्फ इन क्रमशःलिखे हुए संख्यावाची अंको पर, क्रम से पूर्ण नवकार महामंत्र गिनते जाइए,अर्थात् जहां ८१ का अंक है,वहां ८१ नवकार नहीं गिनना है। परन्तु ८१ वां नवकार गिनना है। इस तरह माला के मणकों की तरह क्रम पूर्वक ही गिनते जाना है।

विधी— अंगशुद्धि करके श्वेत ऊनी आसन पर शुद्ध धौत वस्त्र धारण करके ईशान तरफ बैठें (सायामिक लेकर विरति में आइए। सुयोग्य आसन पद्मासन या अर्धपद्मासनादि में स्थिर बैठें। नवकार का यन्त्रमय पेपर क्रमशः सुंदर सुव्यवस्थित लिखकर दृष्टि समक्ष रखें। दोनों हाथ दोनों घूटनों पर सीधे फैलाकर रखें। बस, पूरी तरह पेपर पर के अंक संख्या पर दृष्टि स्थिर रखें। लिखें हुए अंकों पर क्रमशः आंखें आगे-आगे घूमाते ही जाईए। और एक खाने में एक नवकार गिनते जाइए। जप चल रहा है। यदि एक भी खाना भूल गए, और सीधे ही आगे बढ गए तो बडी गडबडी हो जाएगी। बाहरी विचारों के आने से मन विक्षुब्ध हो जाता है ,और उसी कारण खाना या अंक संख्या भूल जाते हैं। इसलिए मन की स्थिरता उपने आप अंक संख्या पर होती जाएगी । सिर्फ आप पूरा ध्यान केन्द्रित रखें ।

बरोबर मन सक्रिय होगा। मन की कसरत बढेगी। जिससे मन बाहर भाग नहीं सकेगा। आंखें बरोबर अंक संख्या पर स्थिर रहेगी। बस,होठ जीभ,अंगुली आदि कुछ भी नहीं हिलाना है। पूरी स्थिरता बनाए रखें।

२) फिर जब १-२ महीने पेपर सामने रखकर उस पर स्थिर होकर जाप करने से अभ्यास काफी अच्छा हो जाए,उसके पश्चात् बिना पेपर रखें ही आंखें बंद करके स्मृति के आधार पर उसी तरह उसी क्रम से गिनते ही जाय। बरोबर १०८ ही नवकार होंगे ०अभ्यास कैसा और कितना है उस पर आधार है।

३) तीसरे प्रकार में एक बार १ से १०८ तक सीधे क्रम से १ माला का जप हो जाय फिर १०८ से १ तक उल्टे क्रम से नवकार का जप करते जाएं।

४) चौथें क्रम में पेपर सामने न रखतें हुए १ माला १ से १०८ तक सीधे क्रम से गिनें। फिर १ माला १०८ से १ तक उल्टे क्रम से गिनें। स्मृति के आधार पर बरोबर उन-उन खानों पर मन जाय और वहां वह अंक संख्या मानस पटल पर बरोबर उठे,और आप वहां पर नवकार बरोबर गिनते जाइए। इस प्रकार के जप में एकाग्रता बढती है। दूसरे विचार नहीं आते हैं। प्रमाद घटकर अप्रमतता०स्थिरता बढती है। निर्जरा 'सव्व पावप्पणासणो' की मात्रा निश्चित बढती है। अजमाइए.... लाभ उठाइए।

श्वास पर नँ और ह्रीँ बीजाक्षरों का ध्यान

१०प्राणों में नौंवा प्राण श्वास है। इसीलिए प्राणवायु कहलाता है। सर्व सामान्य रूप से समस्त जीवसृष्टि प्राणवायु पर आधारित है। सूक्ष्म या स्थूल,समस्त जीवों को अखण्ड रूप से प्राणवायु लेना अनिवार्य है। आयुष्य का आधार प्राणवायु पर है। सभी प्राणी स्वाभाविक रूप से प्राणवायु लेकर जीवन जीते है। यह परंपरा अखण्डरूप से जन्म से मरण तक चलती रहती है। मनुष्य विशेष रूप से प्राणायाम कर सकता है। बिना प्रयत्नविशेष से अखण्ड रूप से स्वाभाविक श्वास का आवागमन चलता ही रहता है।

'आयाम'का अर्थ है विस्तार। प्राणायाम में प्राण का विस्तार करना है। विस्तार-आयाम बिना प्रयत्नविशेष के नहीं होता है। इसी प्रयत्नविशेष से दीर्घश्वास लेना छोडना,रोकना आदि की प्रक्रिया को योग में'प्राणायाम'कहते हैं। चन्द्रस्वर (बाएं नासारन्ध्र)से अनुलोम करते हुए बहुत ही धिरे धिरे लम्बी

गहरी श्वास ली जाय। यह 'पूरक'की प्रक्रिया कहलाती है। करीब इसमें १५ से २० या २५ सेकण्ड भी लगे। लगनी चाहिए। अच्छा ही है। लेकिन श्वास बीचमें खण्डीत न हो,अखण्ड रूप से लेते जाइए।

सबसे पहले दाढी के स्तरपर उल्टी हथेलीवाला हाथ रखकर श्वासकी परीक्षा कर लीजिए। किस नासिकारन्ध्र से श्वास बाहर आ रही है। उस नासिकारन्ध्र को बंद करीए। हो सके तो,वज्रासन में या फिर अर्ध या पूर्ण पद्मासनमें स्थिर बैठिए,मेरूदंड स्थिर सीधा हो। सीना बाहर निकालकर,फैलाकर रखिए। फिर श्वासपरीक्षा करके, दाहिने हाथ की तर्जनी,मध्यमा दोनों अंगुलियाँ मुट्ठी बंद करते हैं,उस मुद्रा में अंदर मोड दीजिए। अन्तिम छोटी कनिष्ठा अंगुली को अनामिका के उपर आगे की तरफ चढाइए। इस तरह अंगुठे और अनामिका इन दो का चिमटा बन जाता है। अंगुठा सूर्यस्वर-दाहिने नासारन्ध्र को और अनामिका अंगुली चन्द्रस्वरवाले-बाएं नासारन्ध्र को बन्द करने में उपयोगी सिद्ध होता है। नाक में अंगुली न डालें। नथूनों के उपर से दबाने पर श्वास बन्द हो जाती है।

गरम ऊनी आसन पर वज्रासन में स्थिर होकर,हल्के से आंखें बंद करके जिस नासारन्ध्र से श्वास बाहर आती है,उसे बंद करके दूसरी तरफ से धिरे धिरे श्वास अन्दर लेना शुरू करीए,ध्यान रखीए,बहुत ही धिरे धिरे लेकिन अखण्डरूप से लेते जाइए। जिसमें आपको २०से३० सेकण्ड लगे तो अच्छा। एक तरफ श्वास ली जा रही है,उसी के साथ होठ और जीभ हिलाए बिना सिर्फ मन से ही मानसिक ॐ का उच्चार करते जाइए। याद रखिए,मात्र मन से,मानसिक ॐ का ही स्मरण करना है। जब तक श्वास लेना नहीं रूकता है तब तक बरोबर ॐ का एक अखण्ड उच्चार स्वरूप स्मरण चलते ही रहना चाहिए। बीच में खण्ड न हो,यह ध्यान रखें। जैसे ही पूरक की प्रक्रिया याने श्वास लेना पूर्ण हो जाय... तुरंत अंगुठे और अनामिका अंगुली से दोनों नासारन्ध्र बंद करके श्वास को रोक लीजिए अर्थात् कुंभक कर लीजिए।

श्वास लेते समय पूरक की प्रक्रिया में जितना समय लगा था,उससे दुगूना समय श्वास रोकने में-कुंभक में लगना चाहिए। कुंभक काल में ॐ का जो उच्चारण-स्वरूप स्मरण किया था,उसका रणकार-नाद सुनना मात्र है। आपका मन ॐ का दर्शन करें, चित्राकृति मानस धरातल पर उपसती है,और तेजोवलय के साथ चमकता हुआ ॐ दिखाई दे।

बस...जैसे ही कुंभक काल पूर्ण हो जाता है,आप दूसरी तरफ के नासारन्ध्र को खोलीए और धिरे धिरे श्वास का रेचन शुरु कीजिए। श्वास बाहर निकलती जाएगी। बहुत ही धिरे धिरे श्वास बाहर निकालते जाइए। ध्यान रखें श्वास लेते-छोडते समय श्वास की आवाज बिल्कुल नहीं आनी चाहिये। श्वास लेते समय जितना समय लगा था,उससे आधा समय रेचक में-श्वास छोडने में लगना चाहिए,और जैसे ही आप रेचन (श्वास छोडना) शुरु करते हैं,तुरन्त साथ ही साथ ह्रीँ का मानसिक स्मरणात्मक उच्चार शुरू करीए। जैसे नीचे पटरी है और उपर ट्रेन चल रही हो,वैसे ही श्वास की पटरी पर ह्रीँ का मानस उच्चार (स्मरण) भी अखण्ड रूप से चलता ही रहना चाहिए।

यह प्रथम एक राउण्ड हुआ। पूरक,कुंभक,रेचक तीनों का मिलाकर एक राउण्ड हुआ। इसमें २०+४०+१०=७० सेकण्ड लगी । अभ्यास विशेष से यह समय धिरे धिरे ८०,९०,१००,१२० सेकण्ड पर भी पहुंच सकता है। लेकिन बीच बीच में बार बार समय न देखें। इससे भी विक्षेप पहुंचता है। अभ्यास हेतु प्राथमिक कक्षा में समय पहले देखकर कर लें। एक या दो बार। बस...बाद में आवश्यकता नहीं रहेगीकितना समय लगता है,यह महत्व की बात नहीं है। लेकिन बिना किसी दूसरे विचार आए बहुत ही अच्छी तरह शान्ति से अप्रमत्त भाव पूर्वक हो,यह ज्यादा महत्व का है।

कम से कम पांच बार अवश्य करें । पांच राउण्ड में अप्रमत्त भावपूर्वक की स्वस्थता बनी रहे। बीच में आंखें न खोलें। श्वास पर भी किसी प्रकार की जबरदस्ती न करें। सहजता और सरलता पूर्वक ही होना चाहिए,लेकिन दोनों में से एक छूट न जाय , इसका ख्याल पूरा रखें। श्वास लेने केसाथ ओँ और छोडने के साथ ह्रीँ का मानसोच्चार अखण्ड रूप से साथ ही साथ होना आवश्यक है। इसी तरह कुंभकावस्था श्वास निरोध काल में ओँ कार या कभी ह्री कार के दर्शन होते रहना चाहिए ।

प्रारंभिक अवस्था में तकलीफ होना संभव है। मन भाग जाए,श्वास अकेला ही चलता रह जाय,या श्वास का आधार संबंध छूट जाय और मात्र ओँ कार ह्रीँ कार का ही उच्चारण रह जाय या आप होंठ खोलकर वाचिक उच्चार शुरु कर दें, ऐसा हो सकता है। लेकिन ये सारी गलतीयां अभ्यास के पश्चात् दूर हो सकती है। यदि किसी को कुंभक करना न भी जमें,तो पूरक रेचक के साथ ह्रीँ -ह्री का मानस स्मरण अखण्ड रुप से करना चाहिए।

लाभ☛ विचारों की स्थिरता आती है। अन्य बाह्य अनेक विचार छूट जाते हैं,बंद हो जाते हैं। मन पर नियंत्रण आता है। स्थिरता बढती है। पूरक के समय ऐसा मानस बनाए कि..ओं कार में जो अरिहन्त,सिद्धादि जो पंच परमेष्ठि भगवन्त है,उनके शुद्धतम परमाणु अपने अन्दर प्रवेश रहे हैं। जिससे काफी शुद्धि बढती है। सबसे बडा लाभ होता है,कर्मक्षय का। निर्जरा प्रतिशत प्रमाण में काफी वृद्धि होती रहती है। यही हमारा साध्य है।

आप दिन-रात्रि में कभी भी करें। भोजन के तुरन्त पश्चात् न करें। दो चार बार करें। विशेषकर चिन्ता की स्थिति में ज्यादा करें। मन शान्त एवं नियंत्रित-स्थिर होने में काफी लाभ मिलता है। जी...हां करते जाइए और लाभ उठाते जाइए। नियमों का पालन सही करें।

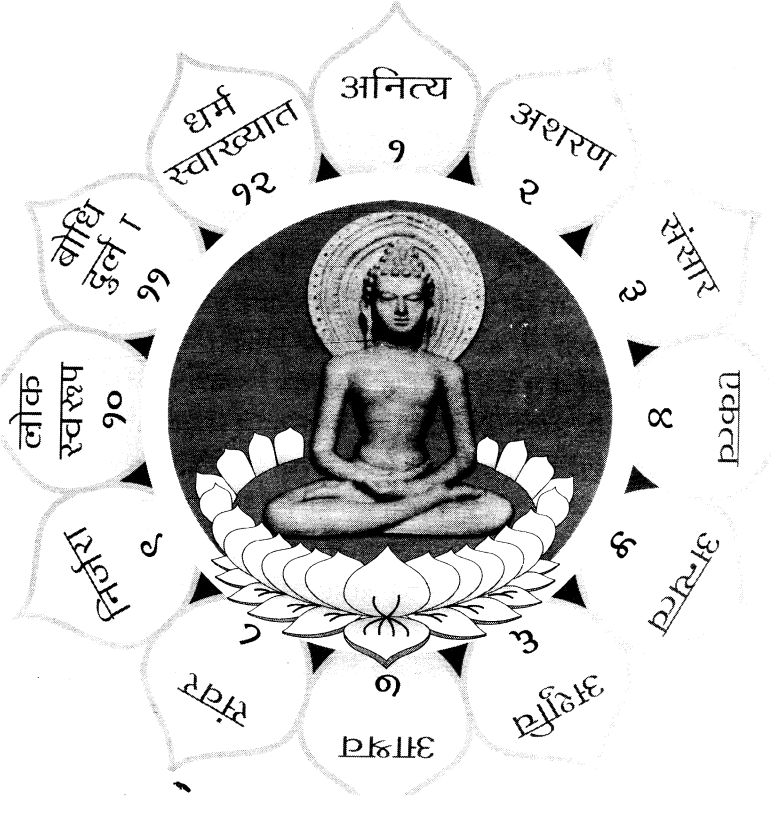

भावना योग

अष्टांग योग की अष्ट प्रक्रिया का मन,वचन और काययोग के तीन विभागों में विभाजन किया जाय,तो यह स्पष्ट होता है कि,यम,नियम,आसन और प्राणायाम ये पहली चार प्रक्रियायें 'काययोग' से,प्रत्याहार यह 'वचनयोग' से और ध्यान, धारणा, और समाधि यें प्रक्रियायें 'मनोयोग'से जुडी हुई है। काययोग में काया (शरीर), वचनयोग में वचन और मनोयोग में मन की प्राधान्यता रहती है। साधक ध्यान में लग जाय उसके पश्चात् आसन गौण हो जाता हैं। अतः 'स्थिरं सुखमासनं'की व्याख्या बरोबर इसी उद्देश्य से की जाती है। अतः प्रथम चार प्रक्रिया तक ही शरीर का लक्ष रहता है। बस,आगे शरीर से उपर उठना है,और पूरा कार्य मन को करना है।

'एकाग्र चिन्ता निरोधो ध्यानं'ध्यान के इस सूत्रानुसार एकाग्रता पूर्वक सब अन्य चिन्ताओं का निरोध हो जाय,फिर ध्यान शुरु हो जाता है । इस सूत्र में प्रयुक्त चिन्ता शब्द अन्य असंख्य विचारों के लिए हैं। साधक-ध्याता जब ध्येयानुरूप आत्मा-परमात्मा-मोक्षादि के ध्यान में स्थिर रहने जाता है, तब चिन्ताएं उसे विक्षिप्त करती है । या पहले से ही चिन्ताएँ अपना अधिकार मन पर जमाती है,जिससे ध्याता ध्यान में प्रवेश ही न कर पाए । इसीलिए ऐसी सब चिन्ताओं का पहले से ही निरोध किया जाता है। लेकिन ये सब चिन्ताएं है किस विषय की?शरीर,संबंध-संबंधी, संसार,अर्थ,काम के ऐसे अनेक विषयों की चिन्ताओं से मानवमन घिर जाता है।

चिन्ता से चिन्तन ☛ मोहादि के आधीन सांसारिक विषयों में फसा हुआ साधक का मन सम्यग् ज्ञान न होने के कारण निरोध नहीं कर पाता है। ऐसी स्थिति में जैन धर्म ने १२ भावनाओं को अनुप्रेक्षात्मक रूप में दर्शायी है। संसार के समस्त विषयों का संकलन करके भावना भाने योग्य १२ विषयों में समाविष्ट किया है। इसे 'भावना योग'कहते हैं। भावना योग से चिन्ताओं को चिन्तन में परिवर्तन किया जा सकता है। अतः चिन्ताओं,तनावों का टलना आसान हो जायेगा । इसलिये,भावनाओं से मन को भावित करना पडता है।'भाव्यते इति भावना'इस व्याख्यानुसार मन के द्वारा भायी जाय,उसे भावना कही जाती है, अुवा 'भवितुःभवनानुकूल भावक व्यापार विशेषः भावना'जैसा बनना है,तदनुकूल भावुक की प्रवृत्ति विशेष को भावना कहा

गया है। भावना यह मन का व्यापार-क्रियाविशेष है। इसीलिए भावनानुरुप सिद्धि होती है। कहा गया है कि -'यादृशी भावना यस्य सिद्धिर्भवति तादृशी तस्य' अर्थात् जिसकी जैसी भावना होती है, उसको वैसी ही सिद्धि मिलती है। (फल मिलता है।) आपकी भावना अच्छी है, तो आप अच्छे हैं और बिल्क ुल खराब है, तो आप खराब है। अतः व्यक्ति के अच्छे-बूरे का आधार उसकी भावना-वृत्ति पर ज्यादा है। आन्तर मन को उद्वेग-चिन्ताओं से बदलकर भावनाओं पर लाकर उसे भावित करना जरूरी है। अतः जिसे भी ध्यान करना हो, ऐसे ध्याता को ध्यान करने के पहले भावनाओं से मन को भावित करना लाभदायक है। भावनाओंसे भावित ऐसा मन ध्यानावस्था में दीर्घकाल तक स्थिर रह सकता है। तथापि यदि पुनःमन विचलित होकर अस्थिर होता है, बाहरी विषयों में भागने लगता है, तो साधक को पुनः भावनाओं का आश्रय लेना चाहिए। इसीलिए भावनायोग को ध्यान से ध्यानान्तर में गमनागमन करते समय विश्रामस्थान कहा गया है। जिससे पुनः संबल प्राप्त होता है, और मन पुनः ध्यान में प्रवृत्त होता है। अतः भावना योग -ध्यान के पहले और पश्चात् आवश्यक एवं उपयोगी है —

१२ भावना ☛ १)अनित्य २) अशरण ३) संसार ४) एकत्व ५)अन्यत्व ६)अशुचि ७)आश्रव ८)संवर ९)निर्जरा १०)धर्मस्वाख्यात ११) लोकस्वरूप और १२) बोधिदुर्लभ ये १२ भावनाएं है।

(१)अनित्य भावना—वैभव, धन-संपत्ति, यौवन, शरीर, आयुष्य, सुख, साधन, मकान, संयोगसंबंध आदि संसार के पदार्थादि अनित्य है, अशाश्वत है, क्षणिक-नाशवन्त है।

(२) अशरण भावना — सिंह के पंजे में फसे हुए हिरण के लिए जैसे कोई शरणदाता नही होता, ठीक उसी तरह मौत के निश्चित पंजे में फसे हुए इन्सान के लिए भी कोई शरणदाता नहीं है। दुःखग्रस्त, त्रस्त, आधि-व्याधि-उपाधि से घिरे हुए के लिए सब अशरण स्वरूप है।

(३) संसार भावना — अनादि अनन्तकालीन इस शाश्वत संसार में ८४ लक्ष जीव योनियों में जन्म मरण धारण करते हुए जीव कर्माधीन स्थिति में सतत परिभ्रमण कर रहे हैं। मुसाफिर खाने के जैसा यह संसार असार है। इसमें कुछ भी सार नहीं है।

(४) एकत्व भावना—'एगोऽहं नत्थि मे कोई' मैं अकेला हुं, मेरा कोई नही है, अकेला ही आया हुं और अकेला ही जानेवाला हुं। मैं किसी के साथ

आया नहीं हुं,और जाता भी नहीं हुं। मेरे साथ भी कोई आएगा नहीं,जाएगा भी नहीं। मेरे पाप की सजा मुझे अकेले ही भुगतनी है।

(५) अन्यत्व भावना — मेरी आत्मा स्वतंत्र है। सबसे भिन्न है,मेरा कोई सगा नहीं है। यह शरीर भी मेरा नहीं है। सर्व बाह्य वस्तुओं में मैं नहीं हुं। सबसे अलग हुं।

(६) अशुचि भावना — यह शरीर हड्डी-मांस-चरबी मल-मूत्र-रूधिरादि से भरा हुआ है। सतत दुर्गंधादि से युक्त है। स्त्री शरीर भी मल-मूत्रादि से परिपूर्ण है। गटर की तरह बहते हुए मार्ग है। कहीं शुचिता -पवित्रता सर्वथा नहीं है।

(७) आश्रव भावना— मन-वचन-काया की राग-द्वेषात्मक वृत्ति-प्रवृत्ति से प्रतिक्षण कार्मण वर्गणा के परमाणुओं का आश्रवण (आगमन)होता ही जाता है। इन्द्रियां, कषाय,अव्रत, योग,क्रियाएं,मिथ्यात्व, प्रमाद आदि द्वारा कर्माश्रव होता है। तत्पश्चात् बंध होता ही रहता है।

(८) संवर भावना — समिति-गुप्ति-परिषह १० यतिधर्म, भावना, चारित्रादि धर्म, कर्माश्रव के निरोधक धर्म है। यदि पाप कर्म का आश्रव रूक जाय तो भावि में दुःख सहन करना ही नहीं पडेगा । धर्म,कर्म का निरोध करनेवाला संवर स्वरूप है।

(९) निर्जरा भावना — उपवासादि बाह्य तप और विनयादि आभ्यंतर तप ऐसे १२ प्रकार का तप कर्मक्षयकारक माध्यम उपायभूत है,जिससे सतत निर्जरा हो सकती है। निर्जरा के लिये ध्यानादि प्रबल साधन है। कर्म बंध हो चुके हैं अब तो नरक में परमाधामी राक्षस से छेदन भेदन ही होना है, ऐसा नहीं है। निर्जरा द्वारा कर्मक्षय करके मुक्त हो सकता हुं।

(१०)धर्मस्वाख्यात भावना—आत्मस्वरूप-चैतन्यस्वरूप, मोक्ष,स्वर्ग, पुण्य, सुखादि तत्त्व बताए हैं। इनकी प्राप्ति के उपाय भी बताए हैं। साधना का मार्ग धर्म है। गुणोपासना धर्म है। जिससे कल्याण संभव है। ऐसा चिन्तन करना।

(११)लोकस्वरूप भावना— अखिलब्रह्माण्ड,लोक,अलोक,लोकके पंचास्तिका यात्मक पदार्थ, समस्त नित्य-अनित्य द्रव्यादि से परिपूर्ण यह लोक अर्थात् अखिल विश्व् अनादि-अनन्तकालीन शाश्वत,अविनाशी स्वभावी है,अनुत्पन्न है। अनन्तानन्त जीव,परमाणु,स्वर्ग,नरक,पूर्वजन्म,पुनर्जन्म लोकान्ते मोक्षादि सब है।

(१२) बोधिदुर्लभ भावना—सुख,साधन,सामग्री,वैभवादि सब मिलना सुलभ है, लेकिन सम्यग् दर्शन-सच्ची श्रद्धा की प्राप्ति होना अत्यंत दुर्लभ है। जो मोक्षकारक है, ऐसी सच्ची श्रद्धा की प्राप्ति दुर्लभ है। आत्मा परमात्मा मोक्षादि तत्त्वों का यथार्थ स्वरूप जानना और मानना अत्यन्त दुर्लभ है।

उपरोक्त १२ भावनाएं है । ध्यान में जानेवाले ध्याता को इन भावनाओं से मन को भावित करके आगे बढना चाहिए। ध्यान भङ्ग होने पर पुनः भावनाओं का आश्रय लेना चाहिए । यह भावनायोग आधे ध्यान का काम कर लेता है। मन बिल्कुल तनाव रहित हो जाता है । राग-द्वेष से विमुख होकर शान्त होता है।

ॐ कार ध्यान

प्रणव बीज मन्त्राक्षर ॐ है । यह बीजाक्षर मन्त्र प्रायःसभी मन्त्रों के साथ जुडता है । अरिहन्त,सिद्ध,आचार्य,उपाध्याय और साधु ऐसे ये पंचपरमेष्ठी भगवन्तो का सम्मिलित स्वरूप यह ॐ कार है। वैदिक परंपरा में भी ॐ को काफी महत्व दिया गया है । तदनुसार 'ओंकार' ॐ इस लिपि में लिखा जाता है,जबकि जैन श्रमण परंपरा में इसकी लिपि-आकृति उपर दिये गए चित्रानुसार है। नवकार महामन्त्र में जो प्रयुक्त है। ऐसे पांचों परमेष्ठी का वाचक यह बीजाक्षर मूलमन्त्र उच्चारण में समान होते हुए भी, उपासना क्षेत्र में इसकी साधनादि भिन्न-भिन्न रूपों में है । जपादि में ॐ ,मन्त्रों के साथ प्रयुक्त होता है।

ध्यान के रूप में ॐ कार का ध्यान प्रयुक्त होता है । योगीजन इसका ध्यान करते हैं । श्लोक में स्पष्ट कहा है —

ॐ कार बिन्दु संयुक्तं, नित्यं ध्यायन्ति ये योगिनः ।
कामदं मोक्षदं चैव, ॐ काराय नमो नमः ।।

बिन्दु सहित ॐ कार का जो योगी नित्य ध्यान करते हैं,सर्व कामित और मोक्ष को प्रदान करनेवाले ॐ कार को नमस्कार हो। प्रस्तुत श्लोक से ॐ कार की महिमा गाई गई है। ॐ कार को ही सबका केन्द्रीभूत बीज मानकर इसे ही नमस्कार किया गया है। इसका ध्यान करना है,इसीमें ध्यान करना है ।

आर्हत् दर्शन में ॐ कार इस लिपि-आकृति में लिखा जाता है। जैसा कि उपर चित्र में दिखाया गया है । इसमें भगवान और गुरू दोनों मिलाकर पंच परमेष्ठी की स्थापना है। उनकी चित्राकृति की स्थापना इसमें दर्शायी गई है । सबसे उपरी नाद-बिन्दु में सर्वोपरि सिद्ध परमात्मा की स्थापना है । वैसे भी लोक में सिद्धों का स्थान सर्वोपरि है। फिर नाद कला जो अर्ध चन्द्राकार है,स्फटिक के जैसी शुद्ध श्वेत है। उसमें अरिहन्त परमात्मा की स्थापना है। वीतरागी सर्वज्ञ भगवान है। इसके नीचे तीन गुरूओं की स्थापना में क्रमशः आचार्य. की, फिर उसके नीचे उपाद्याय की और अन्त में सबसे नीचे के भाग में साधु पद की स्थापना है । इन तीनों पदों से,अनन्त आत्माएं विगत अनन्त काल से मोक्ष में गई हैं ,मुक्त हुई है । उनकी स्थापना है । चित्रानुसार महामंत्र नवकार के पांच मंत्र पदों से पंचपरमेष्ठी को नमस्कार करके प्रथम १०८ नवकार गिनते हुए जप करें। स्तुति करके पांच खमासमणें देंवें ।

आप ध्यान से इस ॐ कार की चित्राकृति को देखिए.... इसमें वज्रासन की आकृति स्पष्ट दिखाई देती है । मेरूदंड को पास की खडी पाई की तरह सीधा रखें। पैरों को घुटनों से मोडकर पंजे उल्टे जमीन पर रहे और आप दोनों पंजों तल पर बैठें। बाएं हाथ की हथेली पर दाएं हाथ की हथेली रखते हुए पैरों की जांघ पर नाभि को स्पर्श करते हुए रखें । इस प्रकार वज्रासन में स्थिर बैठकर ... थोडी सी गरदन पीछे की तरफ झुकाएं । हो सके तो (या चाहें तो) ॐ कार की बडी सुंदर रंगीन तस्वीर सामने रखें। जो उपर चित्र में दर्शाई है,वैसी हो। इसमें ५ रंग हो । उपर नादबिन्दु में लाल,नादकला चन्द्राकार में शुद्ध-सफेद-श्वेत,उसके नीचे पीले रंग के पट्टे के बीच आचार्य की चित्राकृति हो । उसके नीचे हरे रंग के पट्टे में उपाध्याय का चित्र हो। उसके नीचे काले रंग के पट्टे में साधु की चित्राकृति हो। मेरूदंड की खडी पाई भी काले-श्याम रंग की या गोल्डन-सिल्वर रंग की भी हो सकती है।

क्रम प्रकिया — १) सर्व प्रथम शुद्ध-शान्त-निर्जन भूमि पर सामने पाट याचौरंग पर ॐ का चित्रपट्ट स्थापित करें । २) गरम,जाडे मोटे आसन पर स्वयं शुद्ध श्वेत वस्त्र धारण करके वज्रासन में स्थिर बैठें। ३) ऑखें ॐ कार पट्ट पर स्थिर रखते हुए ...श्वास के साथ १०८ नवकार मंत्र का जप स्मरण करें । ४) बहुत ही धिरे-धिरे लम्बी गहरी श्वास पूरी लेकर, श्वास छोडते हुए ॐ कार का उच्चार करें । जिसमें प्रथम,कण्ठ से'अ' अक्षर की शब्द ध्वनि

निकालें ; ध्यान रखें कि, 'ह' की ध्वनि न निकल जाय । फ़िर उसे ही 'आ' करें, यह भी कंठ से ही निकलेगी। फिर दोनों उपर-नीचे के होठों की आकृति बनाते हुए 'उ' की ध्वनि बनाएं । और बाद में 'ओ' की ध्वनि बनाएं। इसे लम्बाते जाइए । अन्त में दोनों होठ बंद करते हुए 'म्' की ध्वनि निकालें। अन्त में नासिकारन्ध्र से 'म्' की ध्वनि निकालते रहें । श्वास पूरी हो जाएगी । अखण्ड श्वास के साथ अखण्ड उच्चार करें । यह हुआ एक ॐ का उच्चार। इसके पश्चात् दूसरी लम्बी-गहरी श्वास लेते हुए दूसरी बार, फिर तीसरी बार, फिर चौथी बार फिर पांचवी बार, पुनः पुनः लम्बी गहरी श्वास लेकर ॐ कार का उच्चारण करें। कम से कम भी पांच बार पहले अवश्य करें।

फिर सीधे ध्यान में प्रवेश करें । ऑखें बन्द ही रहेगी। ललाट पर या हृदय कमल पर ॐ कार आकृति की मानसिक स्थापना करें। उसे ही देखते रहें । आँखों के सामने चित्राकृति सब कलर-रंगों के साथ स्पष्ट दिखाई दें । और पांचों परमेष्ठी की चित्राकृति हीरे से बनाई हो, वैसी चमकती हुई, झगमगाती हुई दिखाई दे । (बन्द आँखों से) बस, आप इसीमें लीन-तल्लीन होते जाईए । इसीमें खो जाईए । अद्‌भूत-अनोखा अवर्णनीय आनन्दानुभूति करते रहोगे ।

जितनी आपकी चित्त की स्थिरता रहे उतनी देर आप स्थिर रहकर ध्यान करते रहें । जब आपको ध्यान छोडना हो तब आप ... पुनः नवकार महामंत्र का १२ बार दीर्घश्वास पूर्वक जप-स्मरण करें । अन्त में पुनः पांच बार ... दीर्घश्वास-लम्बी गहरी श्वास लेते हुए ॐ कार का पहले बताए हुए क्रम से दीर्घ उच्चार हो तो अच्छा रहेगा।

जी...हां...दोनों हाथ खोलकर...थोडे से रगडकर ...चहेरे पर हथेली स्पर्श सहित फेरते हुए ..धिरे से मुस्कराते हुए नेत्रपटल खोलिए । आँखों के सामने ॐ कार चित्रपट्ट के दर्शन जी भर के करीए । खडे होकर पंचांग प्रणिपात पूर्वक पांच बार खमासमणे दीजिए, नमस्कार करीए । जी... हां ... जप - ध्यान पूर्ण होता है ।

इसी तरह प्रतिदिन प्रातः ब्रह्म मुहूर्त में, पिछली शेष रात्री में शान्ति पूर्वक शान्त वातावरण में जप ध्यान करते रहें । अनेक गुना लाभ होता है। कर्म क्षय-निर्जरा काफी होती है । ॐ कार की सिद्धि प्राप्त होती है। कृपया सातों प्रकार की शुद्धियों का ध्यान रखें ।

''चरण कमल में... ध्यान धरत हुं..''

भक्तामर प्रथम श्लोक ध्यान

पूर्व भूमिका :-मानतुंगसूरि महाराज..भूमिगृह (भोंयरे) में ध्यानावस्था में बैठे है । सामने मानस चित्राकृ ति के रुप में परमात्मा आदिनाथ भगवान की कायोत्सर्ग ध्यानस्थ खडी विशाल प्रतिमा है । दृष्टिपथ में मानस दर्शन उन्हें सतत अखण्ड रुप से हो रहा है । मानतुंगसूरि महाराज के शरीर पर बेडीयाँ (लोहे की जंजीर) 'आपादकंठमुरु-शृंखल वेष्टीतांङ्गा'' पैर से लगाकर कंठ तक सारे शरीर पर लगी हुई है । ऐसे समय में महाराज ने अन्य कोई चमत्कारादि कुछ भी न करते हुए सिर्फ आदिनाथ भगवान का स्मरण किया है । संपूर्ण भावपूर्वक समर्पितरुप से मात्र आदिनाथ परमात्मा के चरण कमल में एकाग्रता पूर्वक स्मरण करते हुए ध्यान लगाया है ।ठीक सही सम्यग् रुप से भली भांती चरणों मे शरण स्वीकारी है भाव ऐसे बनाए है कि, 'जिन तेरे ..हे प्रभु तुम्हारे चरणों की ही शरण में स्वीकार करता हुं । बस आपके चरण क्या मिले है .. इस भव संसाररुपी समुद्र को पार करने के लिए महान आलंबन प्राप्त हुआ है । बिना आलंबन के यह महाभयंकर संसार समुद्र तैरना असंभवसा लगता है, इसलिये हे प्रभु! युगादिदेव ! आपके चरण तो मेरे लिए पोत -जहाज -नौका समान है आपके चरणों को पाकर अब मुझे इस महाभंयकर संसार का रत्तिभर -तनिक भी भय नही हैं । मैं अभय हुं, निश्चिंत हुं, आनन्दितं हुं । एक तरफ भव संसार की भयानकता, उसका डरावना-विकराल स्वरुप और दूसरी तरफ आपके चरणों की सौम्यता, आपके चरणों की नखपंक्ति में से निकलती हुई प्रकाश की किरणें ही मेरे लिए आशा की किरणें है । इस भव संसार से तैरने के लिए,पार उतरने के लिए ..पर्याप्त है ।

आखिर इस संसार का स्वरुप महाभयंकर क्यो लग रहा है ?क्योंकि अनेक पाप कर्मो से भरा हुआ है । जैसे समुद्र अथांग-असीम-अमाप पानी से भरा हुआ है, और फिर उसमें ज्वार-भाटा की लहरें प्रतिदिन-प्रतिक्षण मुझे विचलित कर रही है । एक क्षण भी स्थिरता-शान्ति का अनुभव ही नही करने देती है। बात भी सही है,सैकडों अनगिनत पाप करने के बाद मन में शान्ति कहाँ से संभव हो सकती है? जी..हां .. बिल्कुल सही बात है ।.. जितना

पाप ज्यादा किया हुआ हो उतना ही मन ज्यादा अशांत रहता है।अशांती का अनुभव करता है। उद्विग्न रहता है । फिर उसमें से छूटने की चिन्ता सताती है । बचने की सुरक्षा की चिन्ता सवार होती है । अपने आप को बैचेन-चिन्ता-तनाव ग्रस्त महसूस करते है । असहाय -भयग्रस्त- भयभीत महसूस करते हैं । यह स्थिति संसार में हजारों-लाखों की देखी जाती है। चारों तरफ अन्धेरा छा जाता है । एक तरह गहरा समुद्र है,दूसरी तरफ ज्वार -भाटा की लहरें हिलोला लेती हुइ विचलित कर रही है । मानो अपने ही पापकर्मो के कारण में अभी डूबे ,की अभी डूबेंगे का एहसास प्रतिक्षण कराती है । ऐसी स्थिति में शान्ति -समता -समाधि कहाँ से नसीब हो? ऐसे में..अमास की घोर अन्धेरी रात जैसा अंधेरा हो जाता है ।अकेले मुसाफिर को अमास की अंधेरी रात के घने अन्धेरे में मध्य समुद्र के बीच कैसी और कितनी भयावह स्थिति होती होगी ?कल्पना करीए सर्वथा असहाय बने हुए मुसाफिर के सामने बस.. यमराज ही दिखाई देने शेष बचे है । या फिर यमराज मृत्यु इसरुप में एहसास कराते होंगे? इतनी भयंकर भयावह स्थिति में कोई विरला ही मुश्किल से निर्भय, निडर, सुरक्षित और शान्त रह पाए असंभवसा लगता है ।

बात भी सही है कि सुख की आशा में,संसार की मौज मजा के लोभ में, तो कई पाप कर लिए.. बस, उस समय पाप कर्मो के दारुण विपाकों का तनिक विचार तक नहीं आया और जब किये हुए पापों का फल भुगतने की नौबत जब सामने आई तब नरक तुल्य दृश्य आंखों के सामने उपस्थित होने लगा । जिसे देखकर भयभीत होने लगा। अब क्या होगा?क्योंकि पाप की सजा देते समय परमाधामी तो कोई शरण देते नहीं है। तो फिर वहाँ और कौन शरण देने वाला है? जी.. नही, कोई नहीं। अमास की घोर अंधेरी रात के घने अन्धेरे में महासागर के बीच फंसे हुए ज्वार-भाटा की लहरों के बीच थपेडे खाते हुए डूबते हुए ऐसे दृश्य नरक का आभास कराते है। बस, शुरुआत मे ही इतना भयंकर दृश्य आभास में हो तो वास्तव में सचमुच नरक में क्या और कैसी स्थिति होगी ? इसकी विचारणा करने मात्र से रोम-रोम खडे हो जाय, भव का मुसाफिर थरथर कांपने लग जाय, ऐसा दृश्य है ।

बस, ऐसी स्थिति और परिस्थिति में भक्तामर शुरु होता है। एक मात्र आशा की किरण के रुप में दिल को सांत्वना देनेवाला, मन को निर्भय शान्त करनेवाला दृश्य है । भगवान के चरणों के दर्शन, प्रभु के चरणों की प्राप्ति, चरण सेवा की उपलब्धि,बस, यही तारक बनता है, सहायक बनता

है, शान्त करता है, निर्भय करता है। हाश ! अब कुछ आशा जगी धिरे धिरे साधक के चेहरे पर स्मित की रेखाएँ प्रगट होने लगती है। और जैसे जैसे तारक माध्यमस्वरुप चरण कमल का दृश्य और स्पष्ट स्पष्टतर होता जाता है, वैसे वैसे मन को संबल मिलता है। उसमें से आत्म विश्वास बढता है, मनोबल दृढ होता जाता है, साधक की श्रद्धा और मजबूत होती है। अब आशा मात्र आशा ही न रहकर विश्वास मेंपरिणत होती है, और धिरे धिरे विश्वास श्रद्धा में बदलता जाता है । श्रद्धा भी दृढ होती जाती है । सम्यग् दर्शन का प्रगटीकरण-निर्मलीकरण होते होते भयावह संसार तैरने का-पार उतरने का दृढ निर्धार होता है। सचमुच इस संसार सागर से तैरने-पारउतरने के लिए परमात्मा के चरणकमल के सिवाय अन्य कुछ भी नहीं है। ऐसे दृढ मनोरथ मन को और मजबूत बनाते दाते हैं। भाव प्रबल बनते जाते है। इसमें से 'सम्यग् प्रणम्य'सही सम्यग् प्रणाम करने की प्रक्रिया शुरु होती जाती है ,और सचमुच ही प्रणाम-नमस्कार की क्रिया जितनी ज्यादा सम्यग् सहि-भावपूर्ण भावसभर होती जाएगी, उतनी प्रकाश किरणें प्रभु के चरण कमल के नाखून में से तीव्र,तीव्रतर, अधिक अधिक प्रकाशमान होती ही जाती है बस!अब तो आनन्द ही आनन्द उभरता है । प्रणाम-नमस्कार की क्रिया कितनी सम्यग्-सही होती है। क्या कोई भक्त अमर (देवता) जिस तरह भगवान के चरणों में नतमस्तक होकर प्रणाम करते है, वैसा नमस्कार-प्रणाम हो रहा है कि नही ? जी--हां! आपका प्रणाम जितना ज्यादा सम्यग्-सही होगा उतनी ही ज्यादा प्रकाश की किरणें-तेज की किरणें ज्यादा निकलेगीं। तेजोवलय (Aura) और शुद्ध-शुद्धतम-श्वेत-श्वेत्तर शुभ्र बनता ही जाएगा। भक्त की किरणें परमात्मा के चरण स्थित नाखुनों पर पडेगीं। नत मस्तक होते समय और उन नाखुनों में से पुनः प्रतिबिम्बित होती हुई नमस्कार कर्ता भक्त के सन्मुख आएगी। अब वे किरणें मात्र भक्त की नहीं रही, भगवान के चरण नाखुनों में से प्रतिबिम्बित होती हुई, प्रभु के स्पर्श से स्पर्शित होती हुई जब वापिस आ रही है,तब प्रभु के प्रभाव को लेकर आ रही है । वह बडा ही शीतल है, सुहावना है,आनन्ददायी है,पाप नाशक है । उससे पापरुपी अन्धकार दूर होता जाता है। होता जा रहा है। बस, जो कुछ शक्ति है, प्रभाव है, वह परमात्मा के चरण कमल के नाखुनों से निकलती प्रकाश की किरणों में ही और वह एकमात्र सम्यग्-सही-सच्चे भावसभर प्रणाम करनेवाले भक्त को ही प्राप्त होती है । जी--हां सही बात है,ऐसे भक्त जिसे परमात्मा के चरण नख में से

निकलती हुई प्रकाश (तेज) की किरणों रूपी आशीर्वाद,कृपादृष्टि, कृपालब्धि,प्रभु की करुणा भरी अमी दृष्टी प्राप्त हो जाय, सचमुच वह भक्त अमर हो जाय या ऐसा अमर (देवता) भी भक्त बन जाय, अमर होना मात्र महत्व की बात नहीं है, भक्त ऐसे अमर का होना ज्यादा महत्वपूर्ण है । सैंकडों देवता (अमर) कई भक्तों (जीवों) को परेशान भी करते है । लेकिन प्रभुचरणों में सही प्रणाम-नमस्कार करने वाले भक्त की भक्त ऐसे अमर जरुर रक्षा करते हैं । भक्त ऐसा अमर भी देखता है,वह भी जानता है कि प्रभु चरणों में सही प्रणाम करने वाला भक्त ही सही अर्थ में मेरे जैसा मेरे समकक्ष-समान है । अतः ऐसे भक्त की रक्षा नहीं करूंगा तो किसकी करुंगा? क्या ऐसे परमात्मा के सच्चे भक्त को छोडकर भक्त-अमर किसी अन्य की, अभक्त की रक्षा करेगा ? जी --नहीं यदि अमर भी पूरा भक्त है, तो समानधर्मी-सहधर्मी भक्त की रक्षा तो क्या, सेवा करेगा।

ये तो सब होंगे । ये सब मुश्किल-कठीन नहीं है । कठीन है, मात्र प्रभु चरणों में सही सम्यग् भावभरे प्रणाम-नमस्कार और याद रखिए ये भी मुश्किल नही है। जिस दिन अन्तर मन में परमात्मा और परमात्मा के चरण ही, ऐसे भयानक भव संसार से तारने वाले-पार उतारनेवाले एकमात्र परम एवं चरम आलम्बन है। अन्य कोई नहीं। बस ! इतने भाव, इतनी श्रद्धा, दृढ-सच्ची मजबूत हो जाय, फिर सब कुछ संभव है ।

जी--हां यह और ऐसी है, भक्तामर की पूर्व भूमिका-पीठिका। ऐसे है, मानतुंगसूरि महाराज के मनोगत-भाव। भक्ति सभर भावों में से, सच्ची दृढ श्रद्धा में से प्रगट होता है, 'भक्तामर' जी--हां,भक्तामर। यह भक्तों को अमर करता है, अमरों को भक्त बनाता है । इसकी भावना जिनकी आत्मा को स्पर्शेगी,वे भी जरुर भक्त बनेंगे; परमभक्त बनेंगे। वे भी अमर बनेंगे। दूसरे जन्म में वे अमर बनेंगे और इस जन्म में भी मरकर भी अमर बन जाएंगे । आइए, हम भी बनें। क्या बनें ? क्या सिर्फ अमर बनें? जी नही, हम भक्त बनें, सच्चे भक्त बनें । सम्यग् प्रणाम-नमस्कार कर्ता सच्ची श्रद्धावाले भक्त बनें। बस फिर तो चाहिए ही क्या है ? बस, एक बार सच्ची श्रद्धा वाले, सच्चे भक्त बन जाय, तो फिर पाप रुपी तम(अंधकार) दलित (नष्ट) होते क्या देर लगेगी ?और सब पाप कर्मो का सर्वथा-संपूर्ण नाश-क्षय हो जाएगा, तो हम सही अर्थ में अमर-पुनः कभी न मरनेवाले-ऐसे अमर(सिद्ध) बन जाएंगे। जी

हां, अजर अमर पद पा जाएंगे। बस, फिर और क्या चाहिए? यही अन्तिम पद है। इसके पश्चात् और कुछ भी अवशिष्ट रहता ही नही है । बस---

जी--हां,यह है भक्तामर, ऐसा है भक्तामर, और हां-अरे ! यह तो भक्तामर स्तोत्र के प्रथम श्लोक का अन्दर छिपा हुआ रहस्यार्थ-गूढार्थ है। ऐसी कितनी ही गाथाएँ है। ओ..हो..हो.. ! अरे ! वाह..वाह ! बस, खजाना मिल गया है। आह ! वाह ! बस, काम हो गया मेरा तो। आनन्द ही.. आनन्द, परमानन्द---।

कहाँ एक तरफ कर्मबंध की लोहे की जंजीरें, उस पर भी ताले,फिर भोंयरे के कमरो पर भी ताले.., मोह..माया के पापों का बंधन बडा ही खतरनाक होता है । लेकिन इसके सामने एक मात्र तारक है, युगादिदेव आदिनाथ के चरण कमल और उसमें भावपूर्ण सम्यग् प्रणाम-नमस्कार। तराजु के पल्ले की तरह दोनों को पल्लों में तुलनात्मक दृष्टि से तोलते हुए देखिए, कौन बढता है, कौन ज्यादा प्रभावी है? भव संसार का डरावना-भयावह दृश्य या आलम्बन स्वरूप चरणयुगल ? या दूसरी तरफ पापरूपी तम ज्यादा भयंकर है कि-चरणों में नमस्कार करने से निकली प्रकाश की किरणें ? इतना तो आप भी जानते ही है कि अन्धेरा आखिर अन्धेरा ही है। चाहे कितना भी गाढ अमावस्या का अन्धेरा हो, लेकिन एक छोटे से दीपक के प्रकाश से भी सारा अन्धेरा पलभर में ही दूर हो जाता है। बस, प्रकाश के आने की ही देरी है। प्रकाश के होते हुए अन्धेरा वहाँ घूस नहीं सकता है। प्रकाश के साथ और सामने अन्धेरा रह ही नहीं सकता है। ठीक वैसे ही चरणारविंद में नमस्कार से जो प्रभु चरणों के नाखून से निकली हुई तेज किरणों-प्रभारूपी असीम करूणा के सामने पापरूपी तम टिक ही नहीं सकता है। संभव ही नहीं है। पाप कर्म चाहे कितने भी गाढ हो, कितने भी भारी हो,बस, उसकी चिन्ता किये बिना प्रभु चरणों में शरण स्वीकारो,बस समर्पित हो जाओ। फिर अनुभव करके देखो.....।

मानतुंगसूरि महात्मा पैरों से कंठ तक संपूर्ण लोहे की जंजीरों से जकडे हुए-बंधे हुए है। अब कायिक-शारीरिक पंचांग प्रणिपातरूप नमस्कार करना कैसे संभव हो? ठीक है कोई आपके शरीर को बांध सकता है,मन को नहीं। बस, आपका मन आपके हाथ में है। शरीर भले ही न हो, मन को प्रभु चरणों में स्थिर करो। नमस्कार के सिवाय अन्य विचारों का निरोध करो... बस,हो गया चित्त वृत्तियो का निरोध, योग शुरु हो गया(योगश्चित्तवृत्ति

निरोधः)। चित्त की अन्य सब वृत्तियाँ शान्त हो गई, निरोध के पश्चात् अब चित्त एक मात्र प्रभु के चरणों पर स्थिर हो जाय-एकाग्रता बढती ही जाय, बस, ध्यान शुरु हो जाता है। 'एकाग्र-चिन्ता-निरोधों ध्यानम्' ध्यान का लक्षण बरोबर घटता है। मानतुंगसूरि म.ने यही किया था। वहाँ भोंयरे में कहाँ भगवान थे ?कहाँ फोटो या मूर्ति थी ? नहीं, कुछ भी नहीं था। लेकिन मन के लिए दूर क्या है ? याद करते ही'मिले मन भीतर भगवान' स्मरण होते ही भगवान मन के धरातल पर पधारते हैं। प्रगट होते हैं। मन प्रभु के चरणों पर केझश्रर्ष्टी होता है,और जैसे..जैसे एकाग्रता बढती जाती है वैसे वैसे एक एक बेडी-जंजीर तूटती जाती है। ताले खूलते जाते हैं। अपने आप आचार्य श्री ऊपर उठते जाते हैं। अब आप सोचिए ! ध्यान की अखण्ड धारा कितनी प्रबल होगी? नमस्कार की प्रबलता कितनी उच्च कक्षा की होगी, जिससे बिना इच्छा किये भी चमत्कार स्वयं हो रहा है।

ऐसी स्थिति में मानतुंगसूरि महाराज के मुखारविन्द में से भक्तामर स्तोत्र के एक-एक श्लोक बाहर निकलते ही जाते है। याद रखिए ! आपको-हमको तो भक्तामर स्तोत्र कंठस्थ-मुखपाठ है, इसलिए बोल लेते हैं। लेकिन मानतुंगसूरि महाराज को मुखपाठ नहीं था। वे तो स्वयं सर्जक-रचयिता है। अतः उसी क्षण नई रचना करके बना रहे हैं। ऐसे संस्कृत भाषा और उसमें भी छन्द शास्त्र की पद्धति से नये श्लोकों की रचना लोहे की जंजीरों बंधी हुई स्थिति में करना कोई सामान्य खेल नहीं है। वसन्ततिलका नामक छन्द लिया गया है। जिसकी प्रत्येक पंक्ति में १४ अक्षर होते हैं। और उसमें भी ह्रस्व-दीर्घ आदि के क्रम का काफी बडा गणित रहता है। उसीके हिसाब से सुव्यवस्थित रूप से बरोबर रचना होती है। एक ह्रस्व की या दीर्घ की मात्रा में भी फरक नहीं पड सकता है। इस तरह एक एक गाथा मे ५६ अक्षरों का संयोजन है। ऐसे ४८ श्लोकों की अद्‌भुत रचना नई करना और वह भी काफी भाववाही अर्थों,उपमाओं से गंभीर गहन-गूढार्थ भरकर करना, तथा उसमें गुप्त मन्त्रों का समावेश करना तथा अतिशयों का, गुणों का अद्‌भुत वर्णन करते श्रद्धा भक्ति सभर रचना करना हमारे जैसे सामान्य मनुष्यों के लिये तो कल्पना करना भी कठीन लगता है। जबकि मानतुंगसूरि महाराज ने स्वतंत्र रूप से नई रचना की है। आज १००० वर्ष का लम्बा-चौडा काल बीत चुका है। हम सामान्य लोक तो मात्र स्तोत्र पाठ ही करते आये हैं। इसमें भी हजारों की धारणाएँ-मनोकामाएँ पूर्ण होती है। तो सर्जक-रचयिता को होनेवाले बात की तो

कल्पना ही नहीं कर सकते। ऐसी विकट स्थिति में कोई भी नई रचना करने की झंझट में नहीं पडता है। वह अपने सिद्धहस्त स्तोत्र-मंत्रादि के जाप आदि में तल्लीन होता है, वह भी देव-देवीओं के । ताकि वे प्रसन्न होकर आकर शीघ्र ही इच्छित कार्य को करें। ऐसी कोई रचना हो तो मानने में भी आ सकता है कि.,देवता का आव्हान मंत्रादि के स्मरणादि द्वारा किया होगा, जिससे जंजीरे-ताले तूट गए होंगे। लेकिन वैसी तो कोइ बात नहीं है। भक्तामर स्तोत्र की एक एक गाथा में मात्र वीतरागी तीर्थंकर परमात्मा के अतिशयादि गुणों के वर्णन, उपमाओं द्वारा तुलना के सिवाय और कुछ है भी नहीं। कहीं एक भी श्लोक में किसी भी देवी-देवता का नाम तक नहीं है । अरे, यहां तक कि युगादीश्वर आदिनाथ भगवान के जो शासन रक्षक अधिष्ठायक देवी-देवता चक्रेश्वरी देवी और गोमुख यक्ष तक का भी नामोल्लेख भी नहीं किया है। उसके बावजूद भी इतने बडे चमत्कार का सर्जन होना कोई साधारण बात नहीं थी। एक मात्र विशुद्ध भक्ति की है। निश्चित ही मानंतुगसूरि महाराज के ध्यान की उच्चतम धारा अद्‌भुत अनोखी होगी,श्रद्धा की,भक्ति की गुणवत्ता रही थी,इसमें संदेह को अवकाश ही नहीं है। ऐसे अर्थ-भावार्थ से गहन और गंभीर भक्तामर स्तोत्र के एक-एक श्लोक का गूढार्थ रहस्यार्थ समझें और वैसा उपयोगाकार बनाकर हम भी ध्यान करें, ताकि बाहरी नहीं, आन्तरिक चमत्कार अवश्य हो।

आपको आश्चर्य तो इस बात का लगेगा कि भक्तामर स्तोत्र के सब श्लोकों की रचना-पाठ के पूर्ण होते ही,लोहे की सब जंजीरे तूट गई, ताले खुल गए,और वे स्वयं अपने आप बाहर आ गए। हमारे जैसे सामान्य लोगों के लिए यह कल्पना बाहर का बहुत बडा चमत्कार गिना जाता है। जबकि मानतुंगसूरि महाराज तो यहां तक कहते हैं कि यह तो कुछ भी नहीं है। इसमें कौनसी बडी बात है? यह तो खेल मात्र है। परमात्मा इतने सर्वोच्च कक्षा के हैं और उनके गुण इतने उंचे है,फिर उसके सामने तुच्छ खेल मात्र है। वास्तविक चमत्कार तो तब हो, जब जंजीरो की तरह आत्मा पर लगे हुए कर्मों के बंधन तूटने लगे,जन्मों जनम के लाखों-करोडों कर्म जो बंधे हुए हैं, वे तूटकर चकनाचूर हो जाय और आत्मा के ज्ञान दर्शनादि वास्तविक गुण सभी मूल स्वरूप में प्रगट हो जाय। बस, ये हैं सच्चे चमत्कार। और अन्तिम लक्ष वही है।'सव्व पावप्पणासणो'- सब पाप कर्मो का प्रकृष्ट नाश हो-क्षय हो। बस, यही अन्तिम कक्षा का चमत्कार है। इससे बढकर कोई चमत्कार ही नहीं है,

जगत में । और इसके लिए परमात्मा की भक्ति,गुणगान, नामस्मरण,जप-ध्यान आज्ञापालनादि ही सर्व श्रेष्ठ साधना है,उपाय स्वरूप है । इसीलिए ऐसे महान प्रभावी और चमत्कारी महापुरुषोंने भी अपनी लब्धियों, शक्तियों और सिद्धियों को बार-बार दिखाकर सामान्य भद्रिक लोगों की अन्धश्रद्धा का फायदा उठाने का तुच्छ-हीन काम नहीं किया । वे तो साफ कहते हैं कि मैंने क्या किया है ? मैंने तो सिर्फ एक ही काम किया है। बगीचे के माली की तरह मात्र रंग बिरंगे फूलों को गुंथकर माला बनाने जैसा मालीकाम किया है ।'भक्त्या मया रूचिर वर्ण विचित्र पुष्पाम्'भक्तिभाव पूर्वक भगवान के गुणरूपी पुष्पों की गूंथकर यह गुणरुपी माला बनाई है ।'धत्ते जनो य इह कंठ गता मजस्रं' जो भी भाविक ऐसी गुणामाला (पुष्पमाला नहीं) को गले में धारण करेगा, मतलब मात्र गले में पहननी नहीं है,फूलों की माला गले में जरुर पहनी जाती है,लेकिन यह तो गुणामाला है,यह पहननी नहीं है, जो स्वयं अफने कंठ से नित्य प्रतिदिन गाएगा अर्थात् अपने कंठ से प्रभु गुण गाएगा,वह भाविक 'समुपैति लक्ष्मीं' अर्थात् अन्तिम लक्ष्मी-आत्मा की अन्तिम शोभा-वैभव स्वरूप निर्वाणलक्ष्मी-मोक्ष को अवश्य प्राप्त करेगा । उन्होंने अपना नाम नहीं,नाम का भी अर्थ ध्वनीत किया है,अंतिम पंक्तिमें । लेकिन सामान्य लोग 'लक्ष्मी' शब्द का सामान्य अर्थ धन-लक्ष्मी का करके बस वही प्राप्त करने के लोभ-प्रलोभन से'भक्तामर स्तोत्र 'का नित्य पाठ करते रहते हैं । आशा-तृष्णा मात्र लक्ष्मी की ही बंधी हुई है । ठीक है । जब ऐसे भाविकों की सच्चे सम्यग् ज्ञान की दृष्टि अन्दर से खुलेगी, वास्तविक अर्थबोध,गूढार्थ-भावार्थ-रहस्यार्थ का बोध होगा, तब उनको लगेगा कि यह हम सामान्य शब्दार्थ मात्र ही समझते थेऔर उतने मात्र से आकृष्ट होकर 'पाठ' मात्र ही किया। ठीक है,चलो अभी ही सही, अंधश्रद्धा को एक तरफ निकाल फेंके और वास्तविक सही सच्ची श्रद्धा को सम्यग् ज्ञान के आधार पर जगाएं और सही अर्थ में परमात्मा की उपासना करें। तथा कर्मक्षय,पापनाश का चमत्कार सर्जे । ऐसी पवित्र भावना से भक्तामर स्तोत्र का मानस प्रथम श्लोक के अनुरूप ध्यान करने का आस्वाद मात्रात्मक प्रयास यहां करने का मानस बनाया है । भौतिक दून्यवी लाभों की मनोवृत्ती से उपर उठे भाविक-साधक ,पाप कर्म नाशक लक्ष्य-वृत्ति बनाकर ऐसा ध्यान नित्य करे और इसी जन्म में' सव्व पावप्पगासणो'के पद को जीवन में सार्थक चरितार्थ करने का प्रयास करे ।

जैन धर्म की साधना-आराधना का अन्तिम लक्ष्य-चरम ध्येय, सर्वत्र यही एक मात्र है। 'सव्व पावप्पणासणो' बस.. सब पाप कर्मो की प्रकृष्ट - उत्कृष्ट नाश-क्षय हो। नवकार महामंत्र में भी यही है । और चाहे भक्तामर स्तोत्र हो, या अन्य कोइ भी स्तोत्रादि हो.. सबमें चरम लक्ष्य तो यही बताया है । भाविक साधक यही मानस ऐसा ही लक्ष्य संकल्प तो यही बताया है । भाविक साधक करे, और साध्य को सिद्ध केर ।यहां आस्वाद का रुपमें भक्तामर स्तोत्र के मात्र प्रभाव श्लोक पहली गाथा को ही साधना में लाने की प्रक्रिया का अभ्यास किया गया है, जिसे सुज्ञ जन भलिभांति समझे और प्रयास करे। हां नित्य नियमानुसार सर्व प्रथम भक्तामर स्तोत्र का पाठ जरुर कर लें। काफी अच्छे -समुचित संस्कार है । यह भी लाभदायी है । नियमबद्धता भी काफी लाभदायी एवं सहायक है ।

भक्तामरस्तोत्र -प्रथमश्लोक ⇨

भक्तामर -प्रणत-मौलि-मणि प्रभाणा ।
मुद्योतकं-दलित-पाप तमोवितानम् ।
सम्यग् प्रणम्य जिनपाद युगं युगादा ।
वालम्बनं भवजले पततां जनानाम् ।।

भावार्थ ⇨ भक्त ऐसे अमर-देवता जिन्होंने मष्तक पर मुकुट पहन रखा है,तथा जिनके मुकुट में रत्न मणियाँ जडी हुई है, जिसमें से प्रकाश की प्रभा निकल रही है,वे ऐसे मुगुटबद्ध देवता (अमर) आकर परमात्मा के चरणों में झुकते हैं, नमस्कार प्रणाम-करते है,तब उनके मुगुटों में जडित मणियों की प्रभा का हल्का सा प्रकाश (किरणें) निकलकर सामने कायोत्सर्ग ध्यान में स्थित परमात्मा युगादिदेव आदीश्वर भगवान के चरणों के नाखुनों पर पड रही है। प्रभु के चरणों के नाखूनों पर से प्रतिबिंबित होती हुई प्रकाश की किरणें जब पुनः देवताओंको अपने सामने आती हुई दिखाई देती हैं, तब अपने पाप रूपी अंधकार का नाश होता है। ऐसा एहसास देवताओं को बरोबर हो रहा है। इसलिए ऐसे युगादीश्वर भगवान के चरणकमल क्या मिले है मानो भवरुपी संसार समुद्र में पार उतरने के लिए एक सर्वोत्तम आलंबन मिल गया हो। बस,फिर तो संसार रूपी भवसमुद्र में गिरने डूबने का सवाल ही नहीं उपस्थित होता है। जी..हां यह प्रथम श्लोक का भावार्थ है। इसी के गूढार्थ-रहस्यार्थ परमार्थ को,भावों को मानस पटल पर लाना है। तदाकारता, तदर्थकता,

तल्लीनता निर्माण करनी है। एकाग्रता-एकत्वता लाने का पूर्ण प्रयास करना है। जिससे पापनाश का, जो दूसरी पंक्ति में, फल निर्देश किया है, वह साध्य हम हांसिल कर सके। बस, जी..हां संस्कृत भाषा का श्लोक है । अर्थ बरोबर पाठ होना चाहिए ।

पूर्व तैयरी⇨अङ्ग-वसनादि सातों प्रकार की शुद्धि का पालन करें। अङ्गशुद्धि करके शुद्ध वस्त्र धारण करके बैठें। सामने सुंदर सिंहासन हृदय के स्तर तक ऊंचा रखें। बीच मेंस्वस्तिक निकालकर भक्तामर स्तोत्र के ताम्रयंत्र की स्थापना करें। वासक्षेप से या चन्दानादि से पूजा-पाठ करें। धूप-दीपादि अग्रपूजा करें। ईशानविदिशा की तरफ मुख करके अक्षत से यंत्र को बधाते हुए,तीन प्रदक्षिणा देकर जिन स्तुति करें। पन्चांग प्रणिपात करते हुए तीन खमासमार्णे देवें। (नमस्कार करे) श्वेत ऊनी गरम आसन पर बैठें।

आत्म रक्षा⇨वज्रपञ्जर स्तोत्र का शरीर पर नवकार महामंत्र के पदों की स्थापना करते हुए अङ्गन्यास करें,स्थापना करें। अपने आपको एक किले मे बख्तरधारी-कवच धारण करके स्थापित करें,ताकि कोई पापदोष लगे ही नहीं। आत्मरक्षा कर लीजिए (इसी पुस्तक में दिया हुआ है।)

भक्तामर स्तोत्र पाठ ⇨ महामंत्र नवकारादि गिनकर नित्य नियमानुसार 'भक्तामर स्तोत्र' का शुद्ध पाठ करें। मात्र केसेट नहीं। स्वयं पुस्तक में से पढते हुए शुद्ध पाठ करें।

जप ⇨ 'ॐ ह्रीं श्रीं अर्हं श्री आदिनाथाय नमः।' या

'ॐ ह्रीं श्रीं अर्ह श्री आदीश्वराय नमः।' या

'ॐ ह्रीं श्री अर्ह श्री ऋषभदेवाय नम :।'

सभी मंत्र समानार्थक है,आदीश्वर भगवान के ही मंत्र है। इसमें से किसी भी मंत्र का कम से कम तीन माला का जाप शान्त चित्त से करें।

प्राणायाम ⇨ जप के पश्चात् प्राणायाम करें । अनुलोम-विलोम पद्धति का दीर्घ प्राणायाम स्वस्थता पूर्वक करें। बहुत ही धिरे-धिरे लम्बी गहरी श्वास लेते हुए प्रच्छ्वास छोडते हुए साथ ही ॐ और हीं का मानस उच्चार बरोबर करें। सिर्फ १० मिनिट तक मे नौं बार करें। पूरा शरीर शुद्ध प्राणावायु से भर जाता है । (इसी पुस्तक में विधि क्रमादि दिया गया है।)

दीर्घ ॐ कारोच्चार ⇨ लम्बी-गहरी श्वास लेते हुए अ..आ..आदि के क्रम से ॐ का दीर्घ उच्चार करें। (विधि क्रम-प्रक्रिया इस पुस्तक मे है।)

संकल्प ⇨'' मै आज.. इस दिन-तिथि-वार-तारिख को..यहां.. इस जगह उपस्थित हुं। भक्तामर स्तोत्र पाठ पूर्वक परमात्मा श्री आदिनाथ भगवान की ध्यान जपादि साधना कर रहा हुं। मुझे दून्यवी-भौतिक किसी प्रकार के सुखों की कामना-अपेक्षा नहीं है। लेकिन सर्व..पाप कर्मो का क्षय करने के पवित्र संकल्प से भक्तामर जप-ध्यान कर रहा हुं । अतःसर्व पाप कर्मो का नाश होते हुए आत्मगुणों का प्रगटीकरण हो, बस,इसी एक मात्र फलाकांक्षा से मैं यह जप-ध्यानादि कर रहा हुं।'' श्वास निरिक्षण ⇨ धिरे..धिरे.. पुन.. अपनी स्वाभाविक श्वास को देखने पर केन्द्रित होते जाईए । मन को नाक के अग्रभाग पर लाकर केन्द्रित करें, मानों जैसे के नाक के छिद्ररूपी प्रवेश द्वार पर मन प्रहरी-वॉचमेन की तरह निगरानी रखने के लिए खडा हो। प्रत्येक श्वास जो अन्दर आ रही है,उसको स्थिरचित्त से देखते जाइए। ठंडा-शीतल स्पर्श नाक की आन्तरिक दिवालों पर होता है, उसका अनुभव करते जाइए। तथा अन्दर किस गहराई तक-श्वास अन्दर पहुंच रही है,महसूस करते जाइए । पुन.. प्रच्छ्वास के रूप में..श्वास बाहर निकलती जाती है । संपूर्ण निरिक्षण करते जाइए। उसके उष्ण स्पर्श का अनुभव करते जाइए। पूरी बाहर निकले वहां तक देखते ही जाइए। बिना प्रयास के स्वाभाविक रूप से दूसरी श्वास पुनःआती है,जाती है। इस तरह प्रत्येक श्वास का निरीक्षण करने का ही एक मात्र काम करें और कुछ भी नहीं। जैसे-जैसे आप श्वास के आवागमन को देखते ही रहेंगे,अनुभव करने में स्थिर रहेंगे..वैसे वैसे.. दूसरे सब विचार आने बंध हो जाएंगे। बाहरी कोई विक्षेप आपके ख्याल पर भी नहीं आएगा। मन शान्त होता जाएगा। स्थिर होता जाएगा। बडी अच्छी शान्ति का अनुभव होगा।

आसन ⇨ स्थिर आसन में स्थिर बैठें। अर्धपद्मासन,पूर्ण पद्मासन, सिद्धासन-वज्रासनादि ध्यानोपयोगी किसी भी आसन में स्थिर बैठें । आपकी स्थिरता बनी रहनी महत्व की है । कायिक स्थिरता के आधार पर,मन की-मानसिक स्थिरता भी बनती है । रीढ की हड्डी बिल्कुल सीधी रहे । दोनों हाथ सीधे दोनों घूटनों पर सीधे रखें, या फिर.. भगवान-मूर्ति के हाथों की मुद्रा की तरह बाएँ हाथ की हथेली पर दाहिने हाथ की हथेली सीधी रखकर पैरों पर आगे रखें। बस.. संपूर्ण शरीर स्थिर.. होठ-जीभ हिलाने नहीं है । आँखें संपूर्ण काल तक बंध रखें । (बीच में खोले नहीं)

ध्यान ⇨ धिरे-धिरे.. शान्त चित्त को..मनोयोग से मानस बनाते हुए पालीताणा तीर्थ पर ले जाइए । भगवान आदीश्वर दादा की विशाल प्रतिमाजी अपनी आँखों के सामने लाइए। मानस पटल पर उपस्थित करीए । खडी मूर्त्ति आपके मानस चित्रपट पर उपसने लगे, धिरे धिरे.. उनके वर्ण-रंगादि को और स्पष्ट करने की कोशिष करीए । रंग देखिए कैसा है । चेहरा कैसा है ? पूरी तरह स्पष्ट करने का प्रयत्न करें। ईन्द्रादि कई देवता सामने आते हैं। कई प्रकार के आभूषण वस्त्रादि पहने हुए ये ईन्द्रादि देवता सिर पर मुकुट धारण किये हुए हैं । उनके मुकुटों में रत्न-मणियाँ जडे हुए है। उन रत्नों-मणियों में से प्रकाश की किरणें निकल रही है।

धिरे-धिरे..ये ईन्द्रादि देवता.. परमात्मा श्री आदिनाथ भगवान के पास आते है। वे सोचते है..हम तो देव है..लेकिन ये आदीश्वर प्रभु देवों के भी देव-देवाधिदेव है । सर्वोपरि महान देव है। अपने आप को बहुत ही तेजस्वी देदिप्यमान प्रकाशमान मानते हुए ये देवता परमात्मा के समक्ष आते ही प्रभु के तेज के सामने.. अपना तेज सर्वथा फीका-हल्का मानने लगे । भवोदधि तारक एक मात्र ऐसे परमात्मा के गुणों का स्मरण करते हैं, प्रभु के तप तेज, ज्ञान -तेज चारित्र तेज के सामने वे देवता घूटने टेक देते है। पंचागप्रणिपात करते हुए 'सम्यग् प्रणम्य' बहुत ही अच्छी तरह भाव पूर्वक विधिवत खमासमणें देते है । चरणों मे नतमस्तक बनते हैं।

जैसे जैसे मस्तक झुकाते हुए परमात्मा आदिनाथ भगवान के चरणों के पास सिर लाते है,वैसे..वैसे.. मुकुट की मणियों रत्नों में से निकलती हुई प्रकाश की किरणें,खडे प्रभु के नाखून पर पडती हैं। दसों अंगुलियो के नाखून ..इतने बेहद तेज से चमक उठते है..इतने ज्यादा तेज से भरे हुए चमकने लगते हैं.. मानों रत्नों-मणियों से भी हजार गुने ज्यादा प्रकाशमान-तेजस्वी होते हैं। ऐसे समय प्रभु के चरणों के नाखूनों मे तेज की किरणें निकलने लगी। टॉर्च लाइट के प्रकाश या सूर्य की किरणें निकलती हो। वैसी किरणों का प्रकाश बरोबर देखते जाइए। इसे और भी ज्यादा स्पष्ट करते जाइए । ईन्द्रादि देवताओं के मुकुटों में रत्न -मणियाँ है या फिर आदीश्वर प्रभु के चरणों के ये नाखून हिरे-मणि-रत्नो के जैसे है। बेहद चमकते हुए नाखूनों में से जो तेज-प्रकाश की किरणें निकलती है,प्रतिबिम्बित होती है ,वे सीधे देवताओं पर जा रही है । उनके अङ्गों पर पड रही है । इन किरणों के प्रकाश को अपने अङ्गो पर झीलते हुए देवता प्रसन्न मुद्रा में काफी आनंदित

हुए.. अपने पाप रूपी अंधकार का नाश होता, महसूस कर रहे है।'दलित पाप तमो वितानम्' बस, हमारा तो चारों तरफ फैला हुआ सारा पाप रुपी तम-अंधकार नष्ट हो रहा है। अरे! हम तो कृत कृत्य,धन्य धन्य बन गए आज। इस तरह हर्षावेश में काफी आनंदित होते हैं,और ऐसे हर्षातिरेक में अपने हृदयोद्गार निकालते हुए भावव्यक्त करते हैं कि, हमको आदीश्वर परमात्मा के चरण कमल क्या मिले है,मानो...भव संसार रूपी समुद्र में डूबते हुए हमें पोत-नौका स्वरूप महान आलंबन मिला है। बस, हमारे तो सब पापकर्म धुल गये,सब पापकर्म नष्ट हो गये,अब तो संसार समुद्र आसानी से तैर जाएंगे जब इतना बडा आलंबन प्रभु चरणों का प्राप्त हुआ है,तो फिर..ऐसे संसार समुद्र से डरना ही क्या है ? आ..हा..हा..

बस..यह दृश्य देखते..देखते..देवताओं की पंक्ति में हम खुद खडे रह जाय (आप अपने आपको मुकुट-आभूषणादि पहने हुए देवता के रुप में कल्पना करे। धारण करें।) परमात्मा युगादिदेव आदीश्वर दादा की खडी कायोत्सर्ग ध्यानस्थ मूर्ति अपने सामने है,और स्पष्ट देखते जाईए। शुद्ध सफेद वर्ण की है या कैसी है ? आँखों के सामने स्पष्ट करते जाईए। परमात्मा युगादिदेव के चरणारविन्द को देखने में स्थिर होते जाईए। पूरा ध्यान प्रभु के चरणों में अंगुलियो में दस नाखून है,उस पर ध्यान केन्द्रित करीए। आप-आगे बढते हुए..देवता (अमरों) की तरह झुकते हुए पंचांग प्रणिपातरूप से खमासमणें देते हुए (नमस्कार) करते हुए.. वंदन करते जाईए। जैसे जैसे आप झुकते जाएंगे,वैसे वैसे आपके सिर पर जडित मणियों-रत्नों का प्रकाश -किरणों के रुप में प्रभु चरणों के नाखूनों पर पडता जाएगा। जी..हां.. पूरा ध्यान प्रभु चरणों के नाखूनों पर रखिए। भगवान के चरणों के नाखून हीरे-मणि रत्नों से भी हजार गुने ज्यादा तेजस्वी चमकते हुए दिखाइ देंगे। ऐसे और इतने चमकते हुए तो हीरे भी कभी आपने नही देखे होंगे। अब आप पूरा ध्यान दीजिए, प्रभु चरणों के नाखूनों में से जो प्रकाश किरणें प्रतिबिंबित होती है ,वे झुकनेवाले आप पर ही सीधी आ रही है। आपका सिर से पैर तक का पूरा शरीर प्रकाशमान-चमक उठता है। तेज बढता ही जाता है। इतना ज्यादा बढता जाता है कि, अब तो आंखें खोलकर देखना भी असंभव हो जाता है। धिरे-धिरे तेज की तेजस्वीता बेहद बढ गई..जैसे मानों आग-आग होने लगी गर्मी तीव्र होने लगी,और ऐसी स्थिति में..अपने जन्मोजन्म के असंख्य पापकर्मो के पुद्गल परमाणु जलकर भस्म होने लगे। रीतसर धुंआं उठता

दिखाई दे। आग में से धूंआं निकलने लगता है, उपर उठता है। जी..हां.. निर्जरा में ऐसा ही होता है। कई पाप कर्मो का क्षय-नाश हो रहा है। मन ही मन..खूब प्रसन्न होते जाइए। काफी आनन्द की अनुभूति करीए। जो पिछले अनन्त जन्मों में नहीं हुआ, वह पापनाश का कार्य आज हो रहा है। बस, यही चाहना थी, यही संकल्प था। इसी फल की अपेक्षा और इन्तजार था, वही हो रहा है। होने दीजिए (जहां तक पूर्ण स्थिरता बनी रहें, वहां तक आप संपूर्ण स्थिर रहीए) दृश्य का देखना और..अनुभूति चालु रखीए..।

आ..हा.. हा..'दलित पाप तमो वितानाम्' पापरुपी तम-अंधकार सारा दूर होता जाता है। चारों तरफ तेजपुंज छा चुका है। आप स्वयं तेज किरणों के प्रकाश में..सूर्यवत् तेजस्वी बन चुके हैं। परमात्मा के प्रभाव का आज प्रत्यक्ष साक्षात्कार हो रहा है। असीम करुणा, अचिन्त्य प्रभाव महा महिमाशाली, प्रगटप्रभावी परमात्मा के अमाप-तेजोपुंज की किरणों के प्रकाश से सब पाप-कर्मो का दहन-नाश हो रहा है। भस्म ढेर सारी नीचे गिरती हुई, साफ दृष्टि गोचर होती है। धूंआं उपर उठता हुआ स्पष्ट दृष्टिगोचर होता है। अनुभव होता जा रहा है।

धिरे..धिरे..प्रकाशपुंज..कम होता जाता है, घटताजाता है, सब कुछ शान्त होता जाता है। अब धिरे..धिरे..परमात्मा के मुखारविंद की तरफ देखिए। बडी..ही सौम्य, शान्त मुखाकृति है। बस, आप दर्शन करते ही रहीए, पूरा ध्यान परमात्मा के दर्शन में लगाइए। जी..भरकर दर्शन करते रहीए। आह...हा...आनन्द ही आनन्द..परमानन्द...अत्यन्त तेजस्वी महान प्रगट प्रभावी परमात्मा के सौम्य-शान्त दर्शन आज हुए। असीम करुणा प्रगट हो रही है। हमको पावन पवित्र करती जाती है। अग्नि में तप्त होकर चमकता हुआ सोना जैसे बाहर आता है, ठीक वैसे ही हम स्वयं प्रभु के तेजःपुंज स्वरूप प्रकाश में कर्मक्षय करके, पापों की मलिनता धोकर, शुद्ध-विशुद्ध होकर बाहर आए हैं। आज की यह आत्मशुद्धि...परमात्म दर्शन निश्चित ही स्मृति पथ पर सदा बने रहेंगे।

दृढ निर्धारपूर्वक सच्ची श्रद्धा के भावों को व्यक्त करते हुए अपने मन में मानीए कि..ऐसे महासागर जैसे भयंकर इस संसाररूपी समुद्र में हमें तारनेवाले-पारउतारनेवाले एक मात्र युगादीश्वर आदिनाथ प्रभु के चरण कमल ही है, यही एक परम आलम्बन है। बस, इसके सिवाय इस भीषण महोदधि में से तारनेवाला, सर्व पापकर्मनाशक दूसरा कोई प्रबल-सबल

आलंबन नहीं है। भव संसाररूपी इस भयंकर संसार में डूबने से बचने के लिए ऐसा ही आलंबन मुझे और सबको जन्म-जन्म में प्राप्त होता रहे। सबके पापकर्म नष्ट होते रहे। सबका कल्याण हो। ऐसी सर्व

आज ऐसे भीषण कलियुग में युग की आदि में हुए श्री आदिनाथ भगवान की गुण,स्तुति स्वरूप चरण-नमन पूर्वक इस महास्तोत्र के स्मरण-पाठ एवं जप-ध्यान से कर्मक्षय-पापनाश का अगणित लाभ लोग लेते ही जा रहे हैं,यही सबसे बडा लाभ है । और सब लाभ इस महान लाभ के सामने क्षुद्र-तुच्छ है। अन्य सामान्य लाभ इस जीव ने अनन्त बार प्राप्त किये हैं। वे सब अल्प कालिक है।'सर्व पापनाश,सर्व कर्मक्षय'का लाभ दीर्घकालिक है। यह और ऐसा लाभ अनन्तकाल में कभी भी नहीं पाया और जिस दिन यह लाभ एक बार पा लोगे.. बस,फिर दूबारा की आवश्यकता ही नहीं रहेगी। इसलिए संकल्प दृढ करते हुए अपना उद्देश्य पापनाश-कर्मक्षय का ही रखें।

ध्यानानुभूति — धिरे-धिरे.. विचारों को शान्त करने का रखें। मन का कार्य बंध हो जाय। शान्त होते जाइए। मन और स्थिर करने का रखें। मन का कार्य प्रच्छ्वास की क्रिया रोक रखिए। श्वास के रूकते ही विचार रूक जाएंगे। बस,इस बीच कुछ क्षणों में आत्म प्रदेशों पर से..कर्माणु (कार्मण वर्गणा के परमाणु) दूर होते हुए,एवं दूरे हुए..हुए.. एवं भार हल्का हुआ,अनुभव में आयेगा। बहुत ही अच्छा हल्कापन अनुभव करेंगे। बस,आनन्द ही आनन्द का अनुभव करीये।

बहिरागमन ☛ धिरे-धिरे ..पुनः श्वास के निरीक्षण पर केन्द्रित होते जाईये। मन को नासाग्रे स्थिर करके श्वास के आवागमन का शान्तचित्त से निरीक्षण करते जाईए। धिरे..धिरे लम्बी गहरी श्वास लेना शुरू करीये। पूरी श्वास अन्दर भरीये। बहुत ही धिरे.. धिरे लीजिये,लेकिन पूरी लम्बी - गहरी श्वास लीजिये। पूरे शरीर में वापिस चेतना आयेगी। कम से कम पांच बार दीर्घ प्राणायाम करीये।

धिरे..धिरे लम्बी गहरी श्वास पूरी अन्दर भरकर बाद में छोडते हुए दीर्घ ॐ का उच्चार करें। यह क्रिया पाँच बार करें। बडे ही प्रसन्न चेहरे के साथ हाथ जोडीये। (आँखें अभी मत खोलें) शान्ति से जगत के समस्त जीवों के कल्याण की प्रार्थना करीये। 'शिवमस्तु सर्व जगतः','सर्वेऽपि सन्तु सुखिनः के श्लोकों द्वारा विश्व कल्याण की प्रार्थना करीए।

धिरे--धिरे हल्के स्पर्श के साथ अपने चेहरे पर दोनों हाथ फेरिये। आँखों पर से हाथ हटाते हुए...आँखें खोलिए..सन्मुख रहे भक्तामर यंत्र के दर्शन करीये, उसमें परमात्मा आदिनाथ प्रभु के दर्शन करीये...जय बोलिये.. उठकर पाँच बार पंचांग प्रणिपात पूर्वक खमासमणें देते हुए नमस्कार करीये। 'सर्व मंगल' ... पूर्णाहुति।... । ---विश्व कल्याण प्रार्थना ---।

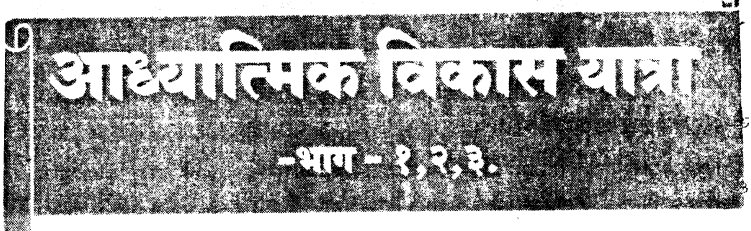

निगोद से एक-एक आत्मा कैसे बाहर निकलती है? चार गती के संसार चक्र में कैसे परिभ्रमण करती है? गुणस्थान मार्ग पर कैसे आरूढ होती है? कैसे कर्मक्षय करती है? और मोक्षमार्ग पर कैसे अग्रसर होती है? मोक्ष में कैसे जाती है?

इन सब विषयों को पू.पंन्यास प्रवर श्री अरुणविजयजी गणिवर्य म.सा. ने चित्रों के साथ सरल हिन्दी भाषा में सुगम शैली में तात्विक-बुद्धि गम्य तर्क - युक्ति पूर्वक समझाया है। जी..हां.. यदि आप अपनी आत्मा का आध्यात्मिक विकास करना चाहते हैं ?

तो अवश्य इस पुस्तक के तीनों भागों का अभ्यास करीए...तत्त्व समझीए... और मोक्ष की दिशा में अग्रसर होईए.....।

जी..हां..पढने योग्य...समझने योग्य...अभ्यास योग्य -

जी..हां.. हिन्दी और गुजराती दोनों भाषाओं में प्राप्त कर्म फिलोसोफी को समझने के हेतु इस पुस्तक का अभ्यास अवश्य करीए। कई शंकाओं का समाधान होगा । कई जिज्ञासाएं संतुष्ट होगी ।एक नई दिशा मिलेगी।

ध्यान के भेद--प्रभेदों का स्वरुप

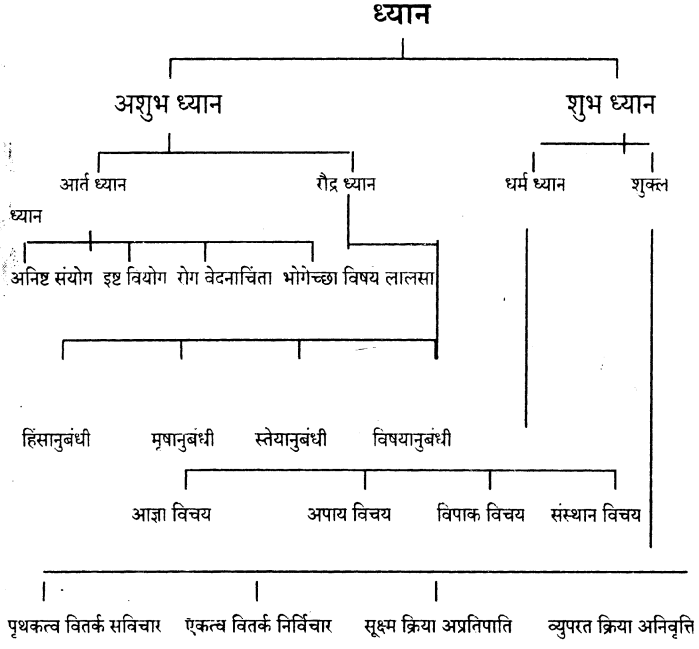

संज्ञि-अर्थात् मनवाले पंचेन्द्रिय जीवों के विचारों को ध्यानरूप कहा गया है। अतः ध्यान विचार प्रधान है । अपना अपना ज्ञान कर्माधीन स्थिति में कर्मसंसक्त होकर,विविधरूप में मन के माध्यम से विचारात्मक होकर प्रगट होते रहते हैं। ये सब विचार ध्यान स्वरुप है। विचारों का अच्छा और खराब दोनों प्रकार के होना स्वाभाविक है । जैसे ज्ञेयानुरूप ज्ञान होता है,वैसे ही ध्येयानुरूप ध्यान होता है। जैसा सामने ध्याय पदार्थ होता है,वैसा उसका चिन्तन ध्यान बन जाता है । यदि ध्येय अशुभ रहेगा,तो ध्यान भी अशुभ बन जाता है। और ध्येय शुभ रहेगा तो उसके अनुरुप ध्यान भी शुभ होता है । लेकिन,विरल व्यक्ति अशुभ ध्येय पदार्थ या व्यक्ति के निमित्त को भी अपने भाव एवं दृष्टिकोन बदलकर जब विचार करता है,तब शुभ में बदल भी सकता है। वैसे ही ठीक इससे विपरीत अपने विचारों को मलीन करते

हुए। कोई शुभ को भी अपने दृष्टिकोन एवं भावानुसार अशुभ बना सकता है। आत्मा के अन्दर अनन्तज्ञान है। लेकिन कर्माधीन अवस्था में आज वह अनन्तवें भाग जितना ही प्रगट है,शेष सब आवृत है । ऐसा जो अनन्तगुना अज्ञान आज कर्मावरण के कारण प्रगट है,दूसरी तरफ मोहनीय कर्माधीन राग-द्वेष क्लेश-कषाय आदि के आधीन विकृत एवं विपरित ज्ञान जो प्रगट होता है,उसे मन विचाररुप में प्रवाहित करता है। प्रत्येक विषय के अनुरुप विचारों का प्रवाह ध्यान ही कहलाता है।

आखिर चिन्ता भी ध्यान है और चिन्तन भी ध्यान ही है । यही तो म्रानवी स्वभाव है । अधिकांशरूप से चिन्ताएँ सांसारिक विषयों से संलग्न होती है और संसार के सांसारिक विषय असंख्य है। कोई प्रमाण-माप नहीं है इसका। इसलिए सांसारिक चिन्ताएं भी अनन्त है। निरंतर लाखों प्रकार की चिन्ताओं में डूबे हुए.. लोग चिन्तन में कैसे प्रवेश करेंगे ? चिन्तन तो उनके लिए दिवास्वप्न समान बन जाता है। क्योंकि चिन्तन आत्मा-परमात्मा-मोक्षादि अनेक तत्त्व विषयक होता है। बस, चिन्ता और चिन्तन में इतना प्रमुख अंतर है । इन दोनों के बीच की भेदरेखा का ख्याल अच्छी तरह आना आवश्यक है । यदि इस भेदरेखा का ख्याल न आए,तो लोग चिन्ता को भी ध्यान मान लेने की भूल कर लेते है। जी हां, चिन्ता भी ध्यान ही है। लेकिन इसे अशुभ कक्षा का ध्यान कहा जाता है । जबकि शुद्ध तत्त्व चिन्तनात्मक विचारों को करने की प्रक्रिया को शुभ ध्यान कहा है। याद रखिए,जिसमें सतत कर्माश्रव हो,कर्मबंध होता रहे वह है अशुभ ध्यान ;और ठीक इससे विपरित कर्मनिरोध, संवर,निर्जरा-कर्मक्षय होता रहे,उसे शुभ कक्षा का ध्यान कहा है। इस संसार में चिन्तात्मक अशुभ ध्यान तो सर्व सामान्य रुप से सभी जीवों को सहज रुप से सुलभ्र है। क्योंकि संसार सभी के साथ लगा हुआ है,कर्मजन्य संसार है। कर्म सभी जीवों के साथ लगे हुए है। कर्मग्रस्त कर्मवश ही संसारी जीव है। इसलिए,अशुभ ध्यान हो,इसमें आश्चर्य की कोई बात ही नहीं है। संसारी हो और चिन्ता न हो,क्या यह कभी संभव भी है ? असंभव जैसी बात है। चाहे अनगिनत-असंख्य चिन्ताएँ न हो तो कुछ कम होगी,लेकिन बिना चिन्ता का-सर्वथा निश्चिंत तो संसार में होना असंभवसा लगता है। या तो संसार का त्यागी साधु संत ही चिन्ता मुक्त हो सकता है।

आर्तध्यान का लक्षण—संसार में ९९% जीव अशुभविचारधारा में ही ज्यादा रहते हैं। जिन विचारों में राग-द्वेष की मात्रा ज्यादा रहती हो, क्लेश कषायोंकी मात्रा प्रमाण में ज्यादा रहती है, चिन्ता-शोक, विषाद, वेदना, पीडा, दुःख, तकलीफ, नुकसान, रोग-परिवार-आजीविका की चिन्ता, इष्ट के संयोग वियोग की चिन्तादि विषयक विचारधारा अशुभ ध्यान है। अशुभ ध्यान में १) आर्तध्यान और २) रौद्र ध्यान, दोनों की गणना होती है। आर्तध्यान का लक्षण करते हुए इस प्रकार कहा है कि 'शोकाक्रन्दनविलपनादिरूपत्वमार्त' जिसमें शोक - आक्रन्दन-विलापरूप विचार प्रक्रिया आर्तध्यान है। आर्त शब्द दुःख अर्थक है। ऐसे विचार, जिनमें सतत दुःख प्रगट होता हो वह सब आर्तध्यान है। जिनमें शोक होना, चिन्ताओं का सताना, खेद-विषाद की वृत्ति बनना, रोगादि विषयक शरीर की, आयुष्यकी, मृत्यु की चिन्ता, कभी परिवार की चिन्ता, कभी आजीविका की चिन्ता, कभी संसार के संबंधो के विषय की चिन्ताएं, वस्तु और व्यक्ति विषयक संयोग-वियोग की चिन्ता, मिले न मिले, अच्छा खराब, इत्यादि सेंकडो प्रकार की चिन्ताएं इत्यादि सब, आर्तध्यान है। ये और ऐसी, सेंकडों चिन्ताएँ मनुष्य को प्रतिक्षण सताती है। अन्दर से मन को झकझोरती है। समस्त इच्छाएं सबकी पूरी होना तो कैसे सम्भव है? लेकिन, इच्छा पूरी हो या न हो, परन्तु इच्छाएं जगती जरुर रहती है, उत्पन्न होती ही रहती है। इच्छाओं का उद्भव केन्द्र कहां हे ? कैसा है ? इसकी शोध काफी आवश्यक है। शायद समुद्र में लहरों का उद्भवना रूक सकता है, आकाश में हवा का बहना शायद रुक सकता है। लेकिन मानव के मन में इच्छाओं का रुकना संभव ही नही लगता है। इच्छाएं अनन्त है। असीम-अमाय-अप्रमाण है। बस, ये इच्छाएँ ही दुःख का जड-मूल कारण है। मनुष्य साधक बनकर इन इच्छाओं पर नियंत्रण पाकर विजेता बनें, तबकी बात अलग है। लेकिन सब कुछ उल्टा ही होता हुआ दिखाई देता है। आज मानव इच्छाओं का दास-गुलाम ज्यादा बनता जा रहा है। ऐसे इच्छाओं के दास जेल में रहे हुए अपराधी के जैसी मनःस्थितिमें आ जाते हैं। फिर शुरु होता है, इच्छाओं को पूरी करने का प्रयास। कई लोग हजार गुना प्रबल पुरुषार्थ करते है, इच्छाओं को पूर्ण करने के लिए। लेकिन, फिर परेशानी..अन्तराय कर्म काफी विघ्न डालते है। इच्छाएं पूरी नहीं होती है। मन विचलित होता

है,फिर इच्छाओं का जोर बढता है। मोह कर्म प्रबल है । इच्छाएं रुकती नही है ,और अन्तराय कर्म बरोबर विघ्न करता रहता है । इस विषचक्र में से मानव बाहर निकल नहीं सकता है,और परेशान हो जाता है। बस,सतत चिन्ताएं शुरु होती है । यह इच्छा पूरी नही हुई,ऐसी धारणा सफल नही हुई,ऐसी स्थिति में सतत चिन्ताओं की व्यग्रता यही आर्तध्यान है।इसमें सतत कर्माश्रव होता ही रहत है । कर्मबंध की प्रक्रिया शुरु रहती है। लेकिन इसका विचार भी मनुष्य को नही आता है । इस विषचक्र में से बाहर निकलना कई बार असंभवसा हो जाता है ।

आर्तध्यान के ४ प्रकार —

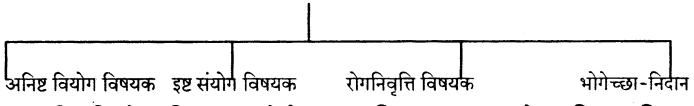

(१) अनिष्टवियोग विषयक कोई भी व्यक्ति या वस्तु जो अप्रिय,प्रतिकूल लगती हो और वह आपके पास से न हटती हो,तो सतत उसकी चिन्ता सताती रहेगी कि यह कब दूर हो;अपने को अप्रिय-अपसंद, हो फिर भी संयोगवशात् वह न हटे,तो सतत उसीके विचार आते रहते है,ऐसी चिन्ता अनिष्ट वियोग विषयक आर्तध्यान कहलाता है ।

(२) इष्टसंयोग विषयक— ठीक प्रथम से विपरीत दूसरा प्रकार है। जो अत्यन्त प्रिय है,ज्यादा पसन्द-मनभावन है । अनुकूल लगती है ,ऐसी वस्तु या व्यक्ति जल्दी मिले,ऐसी सतत विचारधारा रुप चिन्ता,यह इष्ट संयोग विषयक आर्तध्यान है।

(३) रोगनिवृत्तिविषयक— कर्म संयोगवश होने वाली सेंकडों बिमारियों के न मिटने के कारण जो बेचैनी होती है ,रोगों की तीव्र असह्य वेदना पीडा-दुःख से उद्भवनेवाले विचार,मिटाने की निरंतर चिन्ता,कब मिटे,कैसे मिटे, क्या करुं ? इत्यादि विषयक निरंतर विचाररुप चिन्ता को रोग निवृत्ति विषयक आर्तध्यान कहा गया है।

(३) भोगेच्छा निदान— तीव्र राग-द्वेष की वृत्तियों के कारण भविष्य में मुझे यह सुख,यह पद,ये पदार्थ,ऐसी सत्ता ऋद्धि-सिद्धि,सुख-सम्पत्ति,स्त्री, पत्नी आदि मिले,मै शत्रु को मारुं इत्यादि विषयक तीव्रतम राग-द्वेष के कारण भोगेच्छा,सुखेच्छा,तृष्णा,आसक्ति, लोभादि द्वारा तीव्र द्वेष वैमनस्य द्वारा

निरंतर चलती निदान (नियाणा) विषयक विचारधारा ऐसी चिन्ता यह चौथे प्रकार का आर्तध्यान है।

अब आप उपर के चारों प्रकार के लक्षण समझकर यह समझ सकते होंगे कि सारा संसार अर्थात् संसार के सभी जीव इन चारों प्रकार की चिन्ताओं में फसे हुए है। कैसे इस वमल में फसे हुए है कि इनमें से बाहर निकलना ही असंभव जैसा लगता है । बस,निरंतर ये ही विचार-ऐसी ही चिन्ताएं सताती रहती है । बस,इन्हे ही सांसारिक चिन्ताएं कहते है।

रौद्रध्यान के ४ प्रकार —उपरोक्त चारों प्रकार के आर्तध्यान के विषय जब अतिशय तीव्र बनते है,नियत्रंण के बाहर चले जाते है ,तब व्यक्ति के विचार-परिणाम काफी क्रूर-हिंसक भी बन जाते हैं। ऐसी स्थिति में वह मारने-मरने के लिए भी तैयार हो जाता है । उस तीव्रता की स्थिति में चलने वाले क्रूर हिंसक विचारोंवाली चिन्ता,विचारधारा को रौद्रध्यान कहा गया है । लेश्या भी अशुभ और उसमें भी कृष्णादि क्रूर लेश्या बनती जाती है। यह भी ४ प्रकार का है । *१) हिंसानुबंधी रौद्रध्यान* — प्राणियों का वध करना,उन्हें मारना,जान से खतम करना इत्यादि विषयक क्रूर-हिंसक विचारधारा यह हिंसानुबंधी विषयक प्रथम रौद्रध्यान है। *२)मृषानुबंधी रौद्रध्यान* — असत्य भाषी लोगों को निरंतर झूठ बोलने की चिन्ता या झूठे को सच्चा साबित या सच्चे को झूटठा साबित करने की चिन्ता,छल-कपट-प्रपंचादि के आशय पूर्वक झूठ बोलने की चिन्ता या झूठा सिद्ध करके सामनेवाले को मारने की विचारधारा यह मृषानुबंधी प्रकार का दूसरे नंबर का रौद्रध्यान है।

(३)स्तेयानुबंधी रौद्रध्यान — चोरी करने की वृत्ति में,कार्य में,सामनेवाले को खतम करने की विचारधारा,अपनी अतिप्रिय वस्तु की चोरी या अपहरण होने के कारण,न मिलने के कारण मन में उछलनेवाले मारने के तीव्र हिंसक विचार ही स्तेयानुबंधी विषयक रौद्रध्यान है।

(४) विषयानुबंधी रौद्रध्यान — पांचों इन्द्रियों के २३ विषयों की प्राप्ति,भोगेच्छा की पूर्ति,स्त्रीसुख की तीव्र कामेच्छा हेतु किसी को कैसे प्राप्त करना,कहांसे कैसे उठा लाना,उसको प्राप्त करने के लिए किसी को मारना,धन प्राप्ति,परिवार रक्षाहेतु सतत मारक-हिंसक-क्रू र विचार को विषयानुबंधी विषयक चौथा रौद्रध्यान कहा है।

याद रखिए ! ऐसे जब हिंसक-क्रूर वृत्तिवाले विचार बन जाते हैं ,तब वे जल्दी नही छूट पाते हैं । विचारों का आवेग काफी तीव्र रहता है,घण्टो बीत जाते है,ऐसे विचारों के चक्कर में दिनो और महीनों वर्षो भी बीत जाते है। जब तक सामने का निर्धारित कार्य या लक्ष्य सिद्ध न हो तब तक ये और ऐसे विचार कम ता नही होते,लेकिन और तीव्रता से बढते है,विस्फोट करते है ।और इनमें लेश्याअर्थात् विचारों की तरतमता अत्यधिक खराब होती जाती है । कृष्ण लेश्या अर्थात् सर्वथा काले क्रूर विचार अतिशय अधम कक्षा के होते जाते है। राग-द्वेष की तीव्रता बडी खतरनाक हो जाती है। वह सामनेवाले को जब मारे तब की बात तब,लेकिन न मारे वहां तक के उसके सतत मारने के विचारों में जो क्रूरता,हिंसकता आदि रहती है ,वह रौद्रध्यान है । आर्तध्यान में हिंसक-मारक-क्रूर वृत्ति नहीं है। इतना अन्तर जरुर है।

याद रखिए,ध्यान भी विचारात्मक है । अतः,अशुभ अर्थ में इसे भी ध्यान ही कहा गया है ।संसार के ये दो सबसे बडे अशुभ ध्यान है। ४+४=८ प्रकार के अशुभ ध्यान विषयक विचारो में सारा संसार फसा हुआ है। संसार के समस्त जीव इन दोनों के ८ प्रकारों की जाल में फसे हुए हैं । अब इनमें से बाहर निकल नही पाते है । मकडी की जाल की तरह,विचारों की जाल में,चिन्ताओं के घेरे में फसे हुए लोग इसलिए संसार आर्त-रौद्रध्यान प्रधान है । आर्तध्यान में ही इच्छापूर्ति जब नही होती है,तब जीव रोद्र की कक्षा मे चला जाता है ।अतःआर्त की अपेक्षा रौद्र में तीव्रता, क्रूरता,हिंसक वृत्ति काफी ज्यादा है । आर्त में नहींवत्-कम है। ये दोनों ही ध्यान निरंतर कर्म बांधनेवाले है । भारी कर्मबंध होता है। ये भी विचार प्रधान है,और ध्यान भी विचार प्रधान है ।'विचय'शब्द प्राकृत भाषा में विचार अर्थ में प्रयुक्त है । ध्यान का लक्षण,जो एकाग्रता पूर्वक एक ही विषयपर सतत विचार करने का जो है,वह इसमें बरोबर घटित होता है। चिन्ता करनेवाला भी विषयान्तर नही करता है। अपनी चिन्ता के एक ही विषय पर लगा रहता है। अखंडितता भी बनाए रखता है । घण्टों का समय ले लेता है,लगा देता है । कई बार तो माला-जप नामस्मरण करनेवाला जितनी एकाग्रता भगवान में नही लगा पाता है,उससे हजार गुनी ज्यादा एकाग्रता आर्त-रौद्र ध्यान करनेवाले लगा लेते है । इसलिए इनको भी ध्यान की कक्षा में स्थान दिया है।

फरक इतना ही है कि शुभ ध्यान कर्मक्षयकारक होता है, जबकि अशुभ ध्यान कर्मबंध कारक होता है । इसलिए, आर्त-रौद्र को कर्मध्यान कहा जाता है, और शुभ ध्यान को धर्मध्यान कहा जाता है । जो कर्मो को जलाकर क्षय करता है, भस्म कर देता है ।अतः शुभ और अशुभ अर्थात् कर्मकारक या कर्मपरक तथा कर्मध्यान दोनों ही परस्पर विरुद्ध है । है दोनों ही विचार प्रधान। विचारों की ही धारा दोनों में चलती है । सिर्फ अच्छे-खराब का ही भेद है। अशुभध्यान में अशुभ लेश्या है, और शुभ में शुभ लेश्या है ।

धर्मध्यान या शुभ ध्यान का लक्षण यह है कि एकाग्रता पूर्वक तत्त्व के निर्धारित ध्येय विषय पर स्थिर होते हुए अशुभ चिन्ताओं का निरोध करते हुए जो ध्यान किया जाता है, वह शुद्ध-शुभ ध्यान कहलाता है । जबकि ठीक इस लक्षण के विपरीत अर्थात्-'एकाग्रता पूर्वक किसी भी तत्व मात्र को-आत्मा-परमात्मा के विषयों को छोडकर-भूलकर एक मात्र संसार की सांसारिक राग-द्वेष विषयक चिन्ताओं को ही करते जाना अशुभ ध्यान है । अशुभ आर्त-रौद्रध्यान में अशुद्धि- शुभता क्रमशः बढती ही जाती है । जबकि शुभ-शुभ ध्यान में शुद्धता शुभ लेश्या बढती ही जाती है। इसीलिए अशुभ ध्यान कर्म-बंध कराता है, अशान्ति-उद्वेग कराता है । जबकि शुभ-शुद्ध ध्यान, या धर्मध्यान कर्मक्षय कराता है, पाप मैल धोकर साफ करता है, आत्मशुद्धि करता है, सुख-शान्ति-समता आदि गुणों की वृद्धि करता है, आनन्द की अनुभूति कराता है।

लेश्यावर्णनः— विचारों की शुभाऽशुभ विषयक तरतमता को लेश्या कहते हैं। जिसमें शुभ से शुभतर, शुभतम-ऐसी क्रमशः अच्छी शुभ-विचारधारा बनती जाय, उसे शुभ लेश्या कहते है । जो क्रमशः वृद्धिगत है, बढती हुई आगे ही बढती जाती है।दूसरी तरफ हल्के अधम कक्षा के विचार क्रमशः और अशुद्ध-अशुद्धतर-अशुभतम होते ही जाय, ऐसे विचारों को अशुभ लेश्या कहते है। इनको रंगो की संज्ञा दी गई है। रंगो की उपमा से जल्दी समझा जा सकता है। ऐसी दो प्रकार की लेश्याओं के ६ भेद दर्शाए गए है —

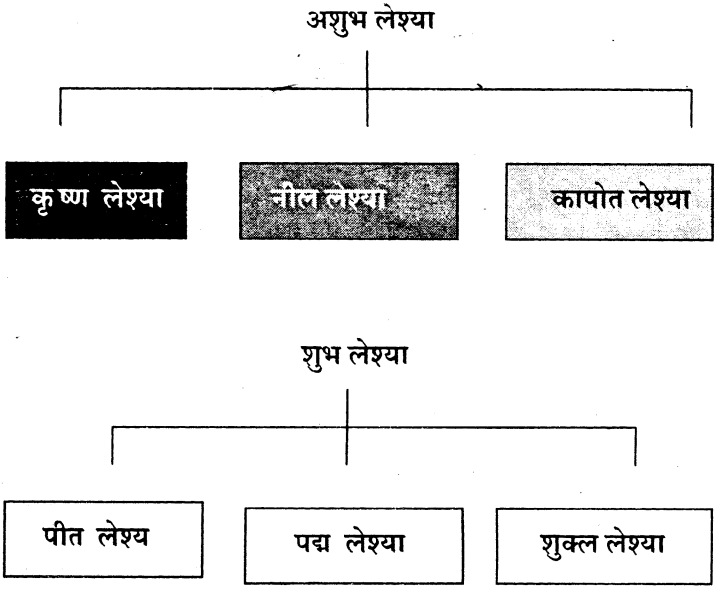

जैसे रंगो में विविध प्रकार के भेद(shade) होते हैं,तरतमता कम-ज्यादा होती है,वैसी ही विचारों में भी तरतमता होती है। इसलिए रंगो की उपमा देकर ६ रंगो के नाम से लेश्याओं को समझाने की कोशिष की है । अशुभ लेश्याओं के तीन विभाग करके सबसे खतरनाक काले रंगवाली कृष्णलेश्या का नामकरण किया है। यन्त क्रूर-हिंसक वृत्ति की यह लेश्या है। संसार में सबसे ज्यादा अंतिम कक्षा के खराब विचार कृष्ण लेश्यावाले के होते है। फिर उससे कुछ १० % या २०% कम खराब विचार-नील लेश्यावाले के है। सर्वथा कृष्ण की तुलना में नील लेश्या कुछ अच्छी गिनी जाती है। रंग भी संपूर्ण काला नहीं परन्तु हल्का सा नीला है,लेकिन काला रंग ८०% है और २० % नील दिखाई दे रहा है।

उसके पश्चात् तीसरी कापोत लेश्या है । कापोत का अर्थ है कबूतर । जैसा कबूतर का रंग होता है,वैसा कापोत लेश्यावाले के विचारों की तरतमता होती है । पहली दो लेश्याओं की तुलना में कापोत ४०% अच्छी लगती है। क्रूरता-हिंसकता की मात्रा प्रतिशत में कम है । अशुभ के विभाग की ये कृष्ण -नील और कापोत लेश्याएँ है।

अब इसके बाद क्रमशः एक-एक सोपान उपर चढते हुए शुभ लेश्या के विभाग में प्रवेश करते हैं । धिरे-धिरे क्रमशः थोडी थोडी लेश्या शुद्ध होती जाती है। जैसे मैले कपडे को धोने से जो शुद्धि आती है ,उसके पश्चात् फिर दूबारा धोने से और ज्यादा सफेदी आती है , वैसे ही विचारों में भी क्रमशः धिरे-धिरे शुद्धि आती है। शुभ लेश्या में पहले पीत लेश्या का क्रम है। कापोत में से आगे बढता हुआ, विचारों कक्षा में ही संपूर्ण सफेद-श्वेत हो नहीं गया है। पहले पीलापन है ,फिर उससे भी ज्यादा आगे बढने पर ऊपरी सोपान पर चढते हुए क्रमशः पद्म लेश्या आती है। प्रतिशत सफेदी है। लेकिन पिछली लेश्याओं की तुलना में विचारों की शुद्धि काफी ज्यादा आई है ,वैचारिक स्तर जरुर सुधरा है । तथा अन्त में छट्ठी शुक्ल लेश्या है। ८०% विचारों में से मलीनता निकल जाती है ,और शुद्धता आती है। अब पीलापन इतना कम हो चुका है कि नहीं के बराबर है। सफेदी काफी बढ गई है। अब विचार शुद्ध हुए है ।

अब आप पहली और अन्तिम लेश्याओं के बीच तुलना करके देखिए,कहां पहली कृष्ण लेश्या एकदम काले रंग की?और कहां अन्तिम शुक्ल लेश्या सफेद वर्ण की? उदाहरणार्थ कहां अमावस्या की घोर अन्धेरी (काली)रात्री ?और कहां पूर्णिमा की पूर्ण चन्द्रवाली चान्दनी फैली हुई प्रकाशवान रात्री?आखिर सूर्य की अनुपस्थिति में दोनों ही रात्री है। लेकिन दोनों में इतना अन्तर है ,जो सबके अनुभव का विषय है।

एक छोटे से दृष्टान्त से वह समझ में आ सकेगा। एक बार ६ मित्र मिलकर बगीचे में घूमने गए। सबको भूख लगी। खाने की इच्छा हुई। सामने जामून का वृक्ष आया देखते ही कृष्ण लेश्यावाले ने फट से कहा, "बस, पूरा वृक्ष ही तने से काट दो, नीचे गिरा दो,बस फिर सब जामून खूब पेट भरकर खा लेंगे।'नील लेश्या वाले दूसरे मित्र ने कहा कि,'तने से ही पूरा वृक्ष काटने की क्या आवश्यक्ता है ? सिर्फ (शाखा)डालियों से ही काटना चाहिए।" तीसरे कापोत लेश्यावाले ने कहा "अरे ! बडी डालीयां नहीं,छोटी-छोटी टहनीया ही काटो,बस,फिर खा लेंगे सब जामून।"

तब चौथे पीत लेश्यवाले मित्र ने कहा "अरे ! यार छोडो सब काटने की बातें। कुछ भी काटने की जरूरत नहीं है। आखिर खाने तो जामून ही है न। डालियां -टहनीयां कहां खानी है ? फिर काटने का सवाल ही कहां

खडा होता है ?चलो,इसकी अपेक्षा ये जामुन के गुच्छे जो वृक्ष पर लटक रहे है ,इतने ही तोड लो,बस हो गया हमारा काम।'' (अब आप ध्यान से देखना-समझना,जब तक अशुभ लेश्यावाले थे, वहां तक बरोबर काटने की ही बातें करते रहे। अशुभ लेश्या में क्रूरता-हिंसकवृत्ति आदि काफी है। लेकिन उनमें भी कम-ज्यादा प्रमाण की तरतमता जरुर है। वह तना,शाखा और टहनीयों काटने के विचारों द्वारा पता चलता है। लेकिन शुभ में आते ही अब हिसकवृत्ति-क्रूरता-काटने आदि की वृत्ति कम हो जाती है।

पांचवे मित्र पद्मलेश्यावाले ने कहा,''अरे यार ! गुच्छे में भी जो कच्चे जामून अभी हरे है ,उनको तोडने से क्या फायदा आखिर वे खाये तो जायेंगे नहीं। इसलिए ,सिर्फ पक्के हुए ही तोडो ।'' यह बात सुनकर छट्ठा मित्र शुक्ल लेश्यावाला सामने आया और उसने कहा कि ''तुम सब पागल हो। अरे ! कभी जामून खाने से पेट भरता है ?भूख मिटती है ? क्या बात करते हो। वह तो घर जाकर भोजन करने से ही मिटेगी तो फिर यहां फिजुल में पेड ही तने से काट दो, शाखाएँ काटो, टहनीयां काट दो, गुच्छे ही तोड दो ये सब निरर्थक बातें करने से क्या फायदा ? चलो, फिर भी जामून खाना ही है ,तो इतने पक्के पक्के जामूनों को इस वृक्ष ने हमारे आने के पहले ही हमारे लिए छोडकर नीचे डाल दिए है । ताकि हमको किसी को काटने तोडने की तकलीफ ही न लेनी पडे। तो फिर आप लोग क्यों फिजुल मे तकलीफ मोल ले रहे हो ? छोडो,सब बातें । चलो चुन चुनकर नीचे के सब जामून इकट्ठें कर लो,खा लो और खाते-खाते घर चले जाएंगे,पहुंच जाएंगे । फिर भोजन कर लेंगे ।'' बस, हो गई बात पूरी।आखिर सबको छट्ठे शुक्ल लेश्यावाले मित्र की बात बहुत ही आसान -सीधी लगी, इसलिए जल्दी से मान ली और ठीक वैसा ही किया।

जी..हां अब आप स्वयं समझ गए होंगे । इन छ मित्रों की विचारधारा जैसी ६ लेश्याएं है।१) पूरा वृक्ष काट दो,यह एकदम हिंसक-क्रूर विचारधारा कृष्ण लेश्या की है। २) शाखाएँ काट दो,ऐसी है नील लेश्या,और टहनीयां काटने के जैसी तीसरी कापोत लेश्या है। ये तीनों अशुभतर अशुभ कक्षा की है । इनमें तरतमता जरुर है। इसके पश्चात् क्रमशः शुभ में प्रवेश करते है।अब काटना करना की अशुभ बात नहीं रहती है। चौथी पीत लेश्यावाला गुच्छे तोडने की बात करता है ,और कच्चे भी मत तोडो,सिर्फ

पके-पके ही तोडों की बात करनेवाला पाचंवी पद्म लेश्या का आदमी है। तथा अन्तिम शुक्ल लेश्यावाला शुभ में है,अतःवह तो काटने-तोडने की बात ही नहीं करता है। उसकी वृत्ति मे बिल्कुल हिंसक वृत्ति नही है,शान्त है। वह तो सिर्फ नीचे गिरे जामुन सिर्फ इकट्ठे करने की ही बात करता है। ऐसी है ये ६ लेश्याएँ। खराब-अच्छी तरतमतावाली विचारधारा को लेश्या कहा गया है। संसार में सभी मनवाले संज्ञि पंचेन्द्रिय प्राणी जो कि समनस्क हैं,विचार करते ही है। सबके विचारों में जो कम-ज्यादा की तरतमता है वह है लेश्या। अब इसे खराब में से क्रमशः कैसे शुद्ध करना यह अपने वश की बात है,ताकि साधना हो सके।

बस,अशुभ लेश्याओं की प्रधानतावाली विचारधारावाला ध्यान अशुभध्यान है। ध्यान भी विचार स्वरुप ही है। सिर्फ एक प्रकार के विचारों में ही मन का स्थिर हो जाना ध्यान है। जब कृष्ण लेश्यावाला किसीको मारने के खराब-अधम विचारों पर केन्द्रित हो जाता है। तब उसीमें स्थिर हो जाता है। उसमें क्लेश-कषाय की मात्रा काफी ज्यादा रहती है। अतः बार-बार वही एक विचार आता रहता है। विषयान्तर न होने के कारण विचारान्तर भी नहीं होता है। विषय और विषयानुरुप विचार भी स्थिर हो जाते है,इसलिए कृष्णादि अशुभ लेश्याओं में भी ध्यान हो जाता है। वह अशुभ ध्यान कहलाता है। अशुभ की कक्षा में रौद्रध्यान और आर्तध्यान दोनों की गणना होती है। जैसा किआगे वर्णन किया है,ऐसे स्वरुपवाले ये आर्त-रौद्रध्यान है। तीव्र हिंसक-क्रूर वृत्तिवाला रोद्रध्यान है जबकि हिंसक-क्रूरता कम होकर चिन्ता की प्रधानता ही ज्यादा रहे,वैसा आर्तध्यान है। ये दोनों अशुभ है,अतःअशुभ कर्मबंध ही ज्यादा कराएगा। कर्मक्षय करने-कराने की तो बात ही इसमें नहीं है। जब जितने समय आर्त-रौद्रध्यान की विचारधारा चलती रहेगी तब वैसे अत्यन्त भारी अशुभ या कम अशुभ कर्मो का बंध भी बरोबर होता ही रहेगा। इसी स्थिति में यदि कर्मबंध होते ही रहे तो कर्मक्षय की बात कब बनेगी ? जो साधना है, जो परिणाम लाना है,वह कब आएगा ? इसके लिए तो एक मात्र विकल्प है

शुभध्यान का।जितना संभव हो सके उतना अशुभ ध्यान से बचकर शुभ ध्यान ही करना पडेगा। शुभ ध्यान भले ही कम हो चलेगा। लेकिन अशुभ के आर्त

रौद्रध्यान से तो जरुर बचना ही चाहिए, इनसे सर्वथा छूटने का प्रयास करना ही चाहिए।

लेकिन एक बात यह भी ध्यान में रखें कि बिना शुभध्यान आए अशुभ अपने आप हिलने वाला नही है। शुभ सर्वथा न आए,फिर भी अशुभ अपने आप टल जाएगा ऐसी मनघडंत कल्पना मत करीये । यह दिन में तारे देखने जैसी असंभव बात है। यदि ऐसा मानस बना लेंगे,तो इसी भ्रान्ति-भ्रमणा में ही यह छोटी जिन्दगी देखते ही देखते हाथों में से चली जाएगी। दूसरी तरफ आपके ईर्द-गिर्द सारा संसार अशुभ का ही भरा पडा है। शुभ की मात्रा ही नाममात्र है । नहीं के बराबर है । व्यवहार भी वैसा है,प्रवृत्तियाँ भी वैसी है,और उसमें भी यदि मित्रवर्ग,स्वजन,संबंधिवर्गादि भी आर्त-रौद्र की अशुभ परिणतिवाला हो,और उनके बीच ही अपना समय बीतता हो,तो फिर आप अशुभ ध्यान से कैसे बच पाएँगे ? बडी भारी समस्या है। दिन भर अशुभ वातावरण,अशुभ वृत्ति वालेवर्ग के कैसे बीच रहना वैसी ही वृत्ति-प्रवृत्ति और संगत हो तो आप चाहेंगे तो भी कैसे बच पाएंगे ? असंभव जैसा लगता है,अतःशुभ ध्यान में प्रवेश किए बिना कोइ विकल्प ही नही है। जैसे-जैसे शुभ की मात्रा बढती जाएगी,वैसे वैसे अशुभ की मात्रा घटती जाएगी अतः शुभ का अभ्यास बढाइए। शुभ-अच्छी संगत बढाइए। साधु संतो की संगत बढाइए,सत्संग करीए,शुभ वांचन बढाइए,सत्साहित्य-सत्शास्त्रों की संगत भी बढाइए अर्थात् उच्च कक्षा का ज्ञान सम्यग् ज्ञान बढाइए। मित्र या स्वजन स्नेही जो भी अशुभ वृत्ति प्रवृत्तिवाले हो उनसे बचने की पूरी कोशीष करीये। १२ भावनाओं का सही स्वरुप जानकर भावनायोग का प्रतिदिन अभ्यास करीए,ताकि मन भावित होता जाय,वास्तविकता समक्ष आती जाय, सत्य समझने लगे और अपने आपको बचाने लगे। यही उचित है ।

शुभ ध्यान —

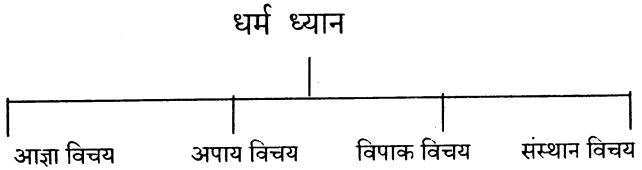

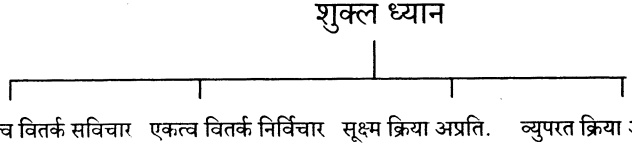

(१) आज्ञा विचय धर्मध्यान — यहां अर्धमागधी (प्राकृत) भाषा मे प्रयुक्त विचय शब्द विचार अर्थ में है। आगे शब्द है,आज्ञा। आज्ञा संबंधि विचार करना,यह आज्ञा विचय नामक धर्मध्यान का प्रथम भेद है। यह शाब्दिक अर्थ हुआ। किसकी आज्ञा? कैसी,किस प्रकार की आज्ञा? इस विषय में सूत्रकार ने स्पष्ट किया है कि— भवोदधितारक - कल्याणकारक,निष्कारण,परमकारुणिक,सर्वज्ञ परमात्मा जो त्रिकालज्ञानी-त्रिकालदर्शी है,उन्होंने जगत् के जीवों का कल्याण हो,इस संसार से निस्तार हो इस हेतु से जो जो आज्ञाप्रदान की है,आज्ञाप्रधान जो धर्म प्ररूपित किया है,उसका चिन्तन आज्ञा विचय धर्मध्यान है। आज स्वयं स्वदेह से परमात्मा विद्यमान नहीं है ,भले ही न हो,लेकिन उनकी देशना के शब्द-अर्थ जो शास्त्रबद्ध है, शास्त्रों में गुंथे गए हैं। ऐसे तारक उपकारक शास्त्र वचन ही आज्ञा है । 'आणाए धम्मो' आज्ञा ही धर्म है । ऐसा समर्पित भाव पूर्वक का चिन्तन-मनन यह आज्ञा विचय प्रकार का धर्मध्यान है। 'आज्ञाराद्धा-विराद्धा च शिवाय च भवाय च' हेमचन्द्राचार्य महाराज ने स्पष्ट कहा है कि आज्ञापूर्वक की आराधना-उपासना ही कल्याण करती है और आज्ञा की ही विराधना भव संसार बढाती है। अतःआत्मा,कर्म,धर्म, मोक्षादि विषयों में सर्वज्ञ परमात्मा तथा उनके शास्त्रों की आज्ञाओं के अनुरुप विचार-चिन्तन-मनन करना,यह आज्ञा विचय धर्मध्यान है ,और ठीक वैसा ही सिद्धान्तानुसारी आचरण करना 'धर्म' है। वैसा जीवन ही धार्मिक जीवन है।

(२) अपाय विचय धर्मध्यान— 'अपाय' शब्द का शब्दार्थ दुःख होता है। दुःख संबंधि विचय याने विचार करना है। लेकिन ध्यान में रखिए,यह चिन्ता नहीं है। चिन्ता होती तो आर्तध्यान बन जाता । लेकिन नहीं,आर्त मे आए हुए,दुःख को भुगतते हुए जीव दुःखी पीडित होता है। अतः चिन्ताग्रस्त रहता है ,जबकि यहां संसार के सैंकडों दुःख के कारणभूत है,यह जन्म-जरा-मरण-भव-संसार ये ही दुःखरुप है । दुःख के कारणरुप है । गारव,विकथा, प्रमाद, परिषह, इत्यादि के कारण सन्मार्ग से पतित न हो जाय

इसके लिए सतत उच्च कक्षा के चिन्तन में मस्त रहना यह अपाय

विषयक अपाय विचय धर्मध्यान है। कर्म के कारण बना हुआ यह संसार दुःखात्मक है,दुःख रुप है ,दुःख कारक है । भले ही पुण्योदय से सुखात्मक संसार प्राप्त हुआ हो,फिर भी वह दुःखदायी है। पुण्य के मात्र उपभोग से पुनः दुःख की परंपरा चलेगी,ऐसी चिन्तनधारा अपाय विचय है। संसार के असंख्य जीव मिथ्यात्व के उदय से ,अज्ञानवश भावि मे दु :खी होने की ही प्रवृत्ति कर रहे है। ऐसी उनकी भावदया चिन्तवते हुए,चिन्तन की धारा चलानी यह भी अपाय विचय है। दोष के स्वरुप का और उससे मुक्ति प्राप्त करने का चिन्तन अपाय विचय है। राग-द्वेष-क्लेश-कषाय सब दुःखदायी है। दुःखात्मक है,दुःखकारक है । चाहे वर्तमान में कोई कितना भीऔर कैसा भी सुखी है ,लेकिन वह राग-द्वेष-क्लेश कषाय कलहादि की प्रवृत्ति-वृत्ति में रत है तो निश्चित उसके भाविमें वह दुःखी होगा। वह भावि स्थिति वर्तमान में आंखों के सामने दिखाई दे,अतः राग-द्वेषादि के परिणाम कितने भयंकर दुःखदायी है,ऐसा चिन्तन यह अपाय विचय धर्मध्यान है। मिथ्यात्वादि-हिंसादि सभी पाप कितने दुःखुायी है? भले ही कालान्तर में दुःख फलदायी है,उनका विचार करना यह अपाय विचय विषयक धर्मध्यान है।

३)विपाक विचय धर्मध्यान— वि+पाक=विपाक :। विविध-पाकः वा विशिष्ट पाकःविपाकः,कर्मो का फल विपाक है। विविध प्रकार के कर्मो का फल या विशिष्ट प्रकार के कर्मो का विशिष्ट फल ये विपाक ही ऐसे हैं,इसका चिन्तन-विचार विपाक विचय है। पाक-अनुभाव है। अनुभाव रसबंध है। चार प्रकार के बन्धों में यह रसबन्ध है। इसीका अपर नाम समानार्थक अनुभाग बन्ध है। किये हुए कर्मों के उदय के कारण देव,मनुष्य,तिर्यंच,नरक गति में जीवों को कितना भारी दुःख भुगतना पडता है? कर्म फल कितना भारी-भयंकर होता है? ऐसा चिन्तन करना चाहिए। जीव जो आज पापादि प्रवृत्ति द्वारा कर्म उपार्जन कर रहे हैं वह कालान्तर में वे ८४ लक्ष जीव योनिरूप संसार चक्र में परिभ्रमण करता हुआ कितने भयंकर फल प्राप्त करेगा? कैसा और कितना दुःखी होगा? ऐसा विचार विपाक विचय विषयक है।

शुभ पुण्य प्रवृत्ति द्वारा उपार्जित शुभ पुण्य कर्म के उदय से कालान्तर में सुख प्राप्ति,स्वर्गादि गति में होगी। लेकिन पुनः भानी काल में क्या होगा?

उस सुख भोग के पश्चात पुनः क्या होगा? फिर कर्मोपार्जन के पश्चात दुःख का उदय होने के बाद क्या और कैसी स्थिति होगी? ऐसा स्वविषयक एवं पर विषयक उभय चिन्तन करना चाहिये । सारा संसार कर्म विपाक स्वरूप है। 'सव्वे जीवा कम्मवस' का सिद्धान्त याद रखें। जीव मात्र कर्माधीन है। किये हुए कर्मानुसार फल-विपाकरूप में सुख-दुःख प्राप्त करता है ,भोगता है। सुख के पश्चात दुःख पुनः पश्चात,दुःख के पश्चात सुख यही चक्रवत् संसार परिवर्तनशील है। ऐसा विपाक-फल विषयक चिन्तन करना विपाक विचय नामक धर्मध्यान है।

४) संस्थान विचय वियक धर्मध्यान — संस्थान अर्थात् आकृति-आकार। लेकिन किसकी आकृति? किसका आकार ? संपूर्ण जगत-विश्व का आकार ध्यान में लाना और उस पर चिन्तन करना यह संस्थान विचय विषयक धर्मध्यान है। इस अखिल ब्रह्माण्ड का स्वरूप क्या और कैसा है ? इसका ध्यान करने से दृष्टि विशाल बनती है। अहंकार पिगलता है। जगत् का वास्तविक स्वरूप सामने स्पष्ट होने से सेंकडों शंकाएँ टल जाती है। संदेह मिट जाते है। वसुधैव कुटुम्ब की विस्तृत धारणा बनती है। इस तरह सभी सत्य सामने स्पष्ट है जाता है।

पंचास्तिकायात्मक यह संपूर्ण विश्व-लोक है। अनन्त अलोक के केन्द्र में लोक क्षेत्र है। धर्मास्तिकाय,अधर्मास्किाय,आकाशास्किाय, पुद्गल, और जीवास्तिकाय ये पंचास्तिकाय पदार्थ है।अङ्गाङ्गी भाव संबंध से एक रूप है। इसलिए यह पांच पदार्थ का बना हुआ विश्व-लोक है। और पांच पदार्थ इस विश्व के घटकीभूत द्रव्य है। ये दो विभाग में विभक्त है। जड और चेतन ये द्रव्य के प्रमुख दो विभाग है। सिर्फ एकमात्र जीवात्मा ही चेतन द्रव्य है। शेष चार अजीव द्रव्य है।

धर्मास्तिकाय गति सहायक, अधर्मास्तिकाय स्थिति सहायक तथा आकाश-अवकाश दायक है। चेतनात्मा ज्ञान-दर्शन-चारित्र,वीर्यादि गुणमय है। पुद्गल द्रव्य वर्ण-गन्ध-रस-स्पर्शादि गुणवान जड है। इसके अनन्तानन्त परमाणु घटकरुप है। परमाणुओं में संघात-विघात सतत होता ही रहता है। जिसके फलस्वरुप स्कन्धरुप पदार्थो का बनना होता है । पुनः विघात होने पर परमाणु स्वरुप में विघटित होता है। ऐसे ८ जाती के भिन्न-भिन्न परमाणु है।

जीवात्मा किसी सें शरीर, किसी से मन, किसी से भाषा, किसी से कर्म आदि बनाता है। पुनः विसर्जित करता है। इस तरह परिवर्तन होता ही रहता है।

१४ रज्जु प्रमाण होने से इस लोक को १४ राज लोक कहते है। नीचे के अधोलोक में ७ नरक क्षेत्र है। उपर के ऊर्ध्वलोक में देव लोक है। जिसे स्वर्ग कहते है। इसमें १२ स्वर्ग, नौं ग्रैवेयक, ५ अनुत्तर आदि विविध प्रकार के देवलोक है। इन सबके उपर लोकान्त को स्पृष्ट ऐसा मोक्ष क्षेत्र है। सिद्ध शिला स्फटिक की है। उसके उपर अनन्त सिद्ध है, जो सर्व कर्मसंग रहित मुक्त है। बीच के नाभिप्रदेश की तरह तिर्च्छालोक -तिर्यक् लोक है। थाली आकार की असंख्य पृथ्वीयां है। फिर उनके चारों तरफ वलयाकार समुद्र है। पुनः द्वीप पुनः समुद्र इस क्रम से असंख्य द्वीप समुद्र है । इनमें मात्र २$^{१}/_{२}$ द्विप-समुद्रों के ४५ लाख योजन विस्तारवाले क्षेत्र में ही मनुष्य बसति है। शेष असंख्य द्वीप समुद्रों में पशु-पक्षी है। मध्य में सुमेरु पर्वत है। जिसके चारों ओर सूर्य, चन्द्र,तारा,ग्रहादि निरंतर परिक्रमा करते रहते है।

अनन्त जीव कर्म बांधते रहते है। चारों गतियों मे ८४ लक्ष जीव योनियों में सतत परिभ्रमण करते ही रहते है। सुख-दुःख की थपेडें खाते हुए समुद्र की लहरों की तरह निरंतर इस संसार सागर में घुमते ही रहते है। धर्म मार्ग से कर्म क्षय करके जीव मोक्ष मे जाते है। सुक्ष्म से लेकर स्थूल तक,१,२,३,४ और ५ इन्द्रियों को धारण किये हुए ऐसे जीव देव,मनुष्य,नारकी एवं तिर्यंच पशु पक्षी रुप अनन्त प्राणी है। अनादिकालीन यह जगत होने से अनुत्पन्न है।अतः इसकी उत्पत्ति नही होती, इसलिए उत्पत्तिकरनेवाले की आवश्यकता ही नही है। इसी तरह अनन्त-अन्त रहित है। अतः अविनाशी है। इसलिए विनाश कर्ता भी कोई नही है। ऐसे इस विश्व में काल मात्र प्राचीन नवीन-छोटे बडे के प्रमाण में वर्तना लक्षण वाला है।

इस तरह पूरे विश्व का अवलोकन करना चाहिए । यह संस्थान विचय ध्यान है। समूचा जगत्, जगत् के घटकीभूत पदार्थ,उनका भी उत्पाद-व्येय -ध्रौव्यात्मक स्वभाव सब कुछ ध्यान में स्पष्ट हो जाता है। समग्र जगत् का स्वरुप स्पष्ट हो जाने के पश्चात् ध्याता-साधक की वृत्तियों में काफी परिवर्तन आता है।

१)आज्ञा २) अपाय ३) विपाक और ४) संस्थान विचय इन ४ प्रकारों का धर्मध्यान इस तरह करना चाहिए । इनका स्वरुप तत्वार्थादि शास्त्रानुसार यहां प्रस्तुत किया है ।

शुक्ल ध्यान ⇨ शुभ ध्यान की कक्षा में धर्म ध्यान के पश्चात् और ज्यादा विशुद्धि आते-आते शुक्ल ध्यान की कक्षा आती है। ध्येय के विषय बदलते हैं। विषय सूक्ष्म से सूक्ष्मतम क्रमशः होते जाते है। संस्थान विचय में संपूर्ण विश्व को विषय बनाया था। अब आगे बढता हुआ साधक अब शुक्ल ध्यान में प्रवेश करके आत्मा के एक विषय पर प्रथम केन्द्रित होता है। क्रमशः शुक्ल ध्यान भी ४ प्रकार का है। क्रमशः संक्षिप्तरुप से इनका विचार यहा किया जाता है।

१)पृथक्त्व वितर्क सविचार शुक्लध्यान— १४ पूर्व स्वरुप जो धर्मशास्त्र है, उनमें जो श्रुत-ज्ञान है,उसके अर्थ, व्यंजन और योग के परस्पर संक्रमण विषयक अखण्ड स्थिर विचारधारा में द्रव्य,गुण और पर्यायों के संचार संबंधि ध्यान को शुक्ल ध्यान का प्रथम चरण 'पृथक्त्व वितर्क सविचार' नामक ध्यान हैं । उदा. पर का-किसी का भी आलंबन लिए बिना निर्मल और शुद्धतम आत्म द्रव्य -पदार्थो पर ही केन्द्रित होना,उसके गुणों में ही एकाग्रता बनानी,यह ध्यान है। अथवा नामकरण का सीधा अर्थ इस तरह भी स्पष्ट समझीए कि इस समग्र लोक में जड और चेतन दो ही मूलद्रव्य है । अब उन दोनों के भेदक गुणों से दोनों भिन्न-भिन्न स्वरूप द्रव्य-गुण-पर्यायों से पृथक् करते हुए,दोनों के स्वभाव-विभावों को पृथक पृथक करते हुए ..द्रव्य पर्याय का भी पृथक्करण करते हुए पर्याय का गुण में, या गुण का पर्याय में संक्रमण करने स्वरुप विषय की अखण्ड ध्यान धारा,यह शुक्ल ध्यान का प्रथम चरण है। अथवा वितर्क-विचार और पृथक्त्व से संयुक्त होकर जैसे समुद्र की लहरों के जैसी जो क्षुब्ध दशा है ,वह शान्त होते कैसा क्या स्वरुप होता है ,वैसा आत्म-शान्त स्वरुप विषयक अखण्ड चिन्तन यह पृथक्त्व वितर्क सविचार शुक्ल ध्यान है।

बस, अब आप संस्थान विचय के धर्मध्यान से आगे बढकर शुक्ल ध्यान में प्रवेश करते समय विषय का संपूर्ण संक्षिप्तीकरण करते हुए विश्व के मूलभूत जड और चेतन दोनों को द्रव्य-गुण-पर्याय स्वरुप से पृथग्-पृथग करते जाइए । फिर उनमें से स्वभाव-विभाव के भेद को वैचारिक स्तर पर

पृथग् करीए,फिर चेतनात्मा द्रव्य पर स्थिर होईए और उसीके गुण-पर्यायों पर स्थिर होने की कोशीष करीए।

२) एकत्व-वितर्क -निर्विचार शुक्ल ध्यान ⇨ जैसे दीपक की ज्योति एकदम स्थिर हो जाय, बिल्कुल ही न हिले,यह तब बनेगा कि जब चारों तरफ से हवा बिल्कुल ही न आए। कब नहीं आएगी..कि जब आप हवा के आने के मार्ग ही बंद कर लोगे तब। फिर मार्गो को भी भूल कर अब मात्र दीपक की ज्योती पर ही स्थिर होना है। वैसे ही शुद्ध चेतनात्मा रूप एक ही द्रव्य पर..स्थिर होकर उसके बाह्याभ्यन्तर पर्यायों को तथा कर्मस्थिति जिसके कारण आत्मप्रदेशों में स्पंदन-कंपन होता था,उसे भी बन्ध करके आत्मप्रदेशों की स्थिरता दीपक की तरह लानी है। उसी तरह अध्यवसायों की धारा में भी स्थिरता आती है।अब धिरे-धिरे निर्विचार होते जाना है। प्रथम प्रकार भेदप्रधान ध्यान है ,जबकि दूसरा प्रकार अभेदप्रधान है। सबसे पहले प्रथम भंग का अभ्यास संपूर्ण व्यवस्थित होने के पश्चात् अब दूसरे भङ्ग के ध्यान में प्रवेश संभव हो पाएगा,अन्यथा नहीं।

जैसे कोई मन्त्रवादी सर्प के काटने से मनुष्य शरीर में जो विष व्याप्त हो चुका है,उसे प्रयोग द्वारा प्रथम.. डंक दिये हुए अर्थात् काटे हुए भाग में खिंचकर लाकर एकत्रित करें और उसके पश्चात् उसे डंक मार्ग से बाहर निकाले; ठीक वैसी ही यह बात है । संस्थान विचय के पश्चात् और शुक्ल ध्यान के भी प्रथम चरण के ध्यान में भेद विषयक ध्यान के पश्चात् अब अभेद पर क्रमशःआना है। जिसमें साधक ध्याता.. विष संकुचन की तरह सब विषय लाकर.. एकरुप करता है। फिर एक विषय पर लाकर केन्द्रित करता है। उस विषय को भी स्थिर करता है,और स्वयं भी उस पर स्थिर होता है । मन सर्वथा शान्त हो जाता है। अब विषय ही नही बचते है,जिस पर मन जा सके। मन सर्वथा निष्प्रकंप बन जाता है।

शुक्लध्यान के इन दो भेदों का अर्थ तथा इनमें भेद करना बहुत जटिल काम है। तत्त्वार्थाधिगमादि सूत्रों में जो इसका विशद वर्णन है,वहां से उसे सही अर्थ में समझने का प्रयत्न करना चाहिए। शुक्लध्यान के इन दो चरणों में चारों घाती कर्मों की अफाट निर्जरा बहुत ही विपुल प्रमाण में होती है । अतः चारों घाती कर्मो का क्रमशःक्षय-नाश सर्वथा संपूर्ण होता है। सर्व प्रथम मोहनीय कर्म का क्षय होता है , जिससे वीतरागता गुण पूर्ण प्रगट होता

है। अन्तराय कर्म का भी संपूर्ण क्षय होने से अनन्त वीर्य गुण प्रगट होता है । यह अनन्त शक्ति कोई अनोखी अद्‌भुत होती है। ३) ज्ञानावरणीय कर्म भी संपूर्ण नष्ट होने पर केवल ज्ञान और ४) दर्शनावरणीय कर्म को सर्वथा नष्ट होने पर केवल दर्शन गुण संपूर्ण रुप से प्रगट होता है। इन चारों घाती कर्मो के सर्वथा संपूर्ण क्षय होने के कारण आत्मा स्वतः सर्वज्ञ सर्वदर्शी बनती है। केवली या सर्वज्ञ के संक्षिप्त नाम से पहचाने जाते है।

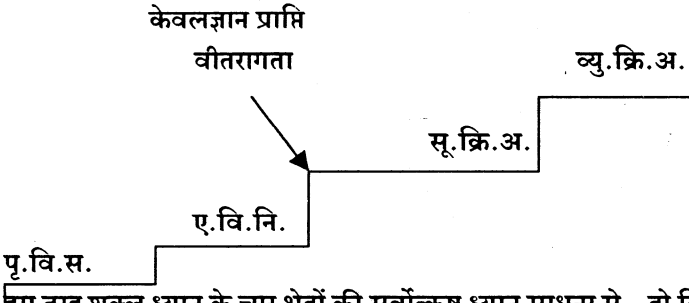

इस तरह शुक्ल ध्यान के चार भेदों की सर्वोत्कृष्ट ध्यान साधना से.. दो विभाग में पूर्ण लाभ होता है।

प्रथम दो चरण पूर्ण होते ही वीतरागता,सर्वज्ञता आदि की कक्षा प्राप्त होती है। तथा-तीसरे और चौथे चरण के पश्चात् अन्त में निर्वाण-मोक्ष प्राप्त होता है। बस आत्मा स्वयं सिद्ध-बुद्ध-मुक्त बनती है।

३)सूक्ष्म क्रिया अप्रतिपाति शुक्ल ध्यान— अर्थात् सूक्ष्म क्रिया से भी पतित न होने की प्रक्रिया को सूक्ष्म क्रिया अप्रतिपाति नामक शुक्लध्यान का तीसरा प्रकार है। इसमें मनोयोग और वचनयोग का सर्वथा निरोध करके सिर्फ एक काययोग ही रखा है ,और ध्यान की धारा कोई गजब की चल रही है। कर्मक्षय का प्रमाण अनेक गुना ज्यादा बढता है।

४)क्रिया अनिवृत्ति शुक्लध्यान— अर्थात् क्रि या की अनिवृत्ति के उच्छेदरूप जो ध्यान,वह शुक्ल ध्यान का चौथा प्रकार है। काययोग भी बंद किया जाता है। इस तरह तीनों योगों का सर्वथा निरोध हो जाने के पश्चात् शैलेशीकरण करके आत्मप्रदेशों को शैल (पर्वत) की तरह घनीभूत करके पंच

ह्रस्वाक्षर मात्र काल में ध्यान करते है,यह चौथा प्रकार है। बस,इसके पश्चात् सीधे देह छोडकर (निर्वाण पाकर) आत्मा एक समयावच्छेद काल मात्र में सीधे लोकान्तप्रदेश में जाकर स्थिर हो जाती है। सिद्ध बनती है। मोक्ष में सिद्ध शिला के भी उपर लोक के अन्त भाग को स्पर्श करके रहती है। मुक्त कहलाती है। बस,अब पुनः संसार चक्र में आना ही नही है,और जन्म-मरण करने ही नही है। 'कारणाभावे कार्याऽभावः' कारण के अभाव मे कार्य का भी अभाव रहता है। इस नियमानुसार कर्मरुप कारण के अभाव में जन्म मरणरुप कार्य कहां से होगा ? नही होता है। इसलिए मोक्ष में पहुंची हुई कर्म रहित ऐसी कोई भी मुक्तात्मा वापिस संसार में नही आती है । वहां सर्वथा अशरीरी स्वरूप में शुद्धात्मा रहती है। एक प्रकाश पुंज के स्वरुप में रहती है। अनन्त काल तक अनन्त सुखानुभूति करते हुए रहती है। अनन्त ज्ञानानन्द - परमानन्द स्वरूप मे लीन रहती है। अक्षय स्थिति है। निरंजन-निराकार-शुद्ध परमात्म स्वरुपमें स्थिर रहती है। ऐसे अनन्तानन्त सिद्ध स्वरुप मुक्तात्माओं को 'नमो सिद्धाणं ' के एक पद से नमस्कार किया गया है। मोक्ष निर्वाण

ध्यान के अधिकारी— उपरोक्त ४ प्रकार के ध्यान दर्शाए गए है। आर्तध्यान के अधिकारी सर्व संसारी जीव है। लेकिन गृहस्थ, श्रावक और छट्ठे गुणस्थानक पर पहुंचे हुए साधु-साध्वी भी है। रौद्रध्यान के अधिकारी समस्त संसारी जीवो में अति कषाय-क्लेश-राग-द्वेषादि,क्रूर-हिंसक वृत्तिवाले अनेक जीव है।

धर्मध्यान के अधिकारी शुभ लेश्यावाले, संसारी गृहस्थ, श्रावक-श्राविका,साधु-साध्वी आदि है। सम्यग् दृष्टियोंका अधिकार विशेष रहता है। शुक्लध्यान के प्रथम एवं द्वितीय चरण के अधिकारी पूर्वधर-श्रुतधर तथाप्रकार के उत्तम तत्त्वज्ञानी,साधु -साध्वी बताए है । 'पूर्वविदः परे केवलिनः' ॥ तत्त्वार्थ सूत्र'॥ १२ वे गुणस्थानक तक के शुद्ध शुक्ल लेश्यावाले ही अधिकारी है। द्वितीय चरण के शुक्ल ध्यान वाले आगे बढते ही केवलज्ञान -केवलदर्शन प्राप्त कर लेते है। सर्वज्ञ बन जाते है। फिर शुक्ल ध्यान के ३ रें एवं ४ थें चरण के अधिकारी मात्र केवली-सर्वज्ञ ही है,१३ वे गुणस्थान के स्वामी है। बस, जो योगनिरोध करते है,और अन्त के सर्व कर्म रहित निर्वाण-मोक्ष प्राप्त करते है।

ध्यानानुसार गति ⇨पहले दो आर्तध्यान और रौद्रध्यान कर्म बंधानेवाले संसारवर्धक है,जबकि, 'परे मोक्ष हेतुः' सूत्र से तत्त्वार्थकार ने धर्मध्यान और शुक्लध्यान को मोक्ष का हेतु-कारणभूत बताया है। आर्तध्यान की प्रबलतावाले जीव अधिकांश रुप में उसी में मरकर तिर्यञ्च-पशु,पक्षी के जन्म में जाते है । रौद्रध्यान की स्थिति में ही निरंतर रहनेवाले हिंसक-क्रूरवृत्तिवाले अधिकांश जीव नरक गति में जाते है। धर्मध्यान करनेवाले-इसके अधिकारी जीवों की आगामी गति,मनुष्य गति होती है,और शुक्ल ध्यान से तो केवलज्ञान और मोक्ष ही प्राप्त होता है। लेकिन शुक्लध्यान के प्रथम चरण पर ही रहा हो,और आगे प्रगति नही साधी है,और वहीं प्रथम चरण पर ही मृत्यु हो जाय,तो ऊंची वैमानिक देव गति प्राप्त होती है। इस प्रकार चारों प्रकार के ध्यान के आधार पर चारों प्रकार की गतियां प्राप्त होती है। लेकिन संसार में आर्तध्यान की मात्रा काफी ज्यादा प्रमाण में रहती है,इसी कारण तिर्यच-पशु,पक्षी की गति में अगणित असंख्य जीवों की संख्या है । इसी तरह रौद्रध्यान करने वाले,तीव्र क्लेश-कषाय-कलह करते हुए कृष्णादि लेश्याओं में रहनेवाले, बहुसंख्य लोक नरक गति में जाते है । मनुष्य और तिर्यच गति के दोनों जीव नरक गति में जाते है। नरक गति में भी सातों नरकों में असंख्य नारकी जीव है । शुभ लेश्या में धर्मध्यान मे अधिकारी अनेक जीव मनुष्य गति में पुनःजन्म लेते है । तथा स्वर्ग की देवगति में भी धर्मध्यान के अधिकारी अनेक जाते है। जोशुक्ल ध्यान केप्रथम चरण तक का आस्वाद लेते हैं ऐसै कुछ ही विशिष्ट जीव ऊंची वैमानिक देवगति में जाते है।

यह है, चार प्रकार के ध्यानों का स्वरुप। एक एक के चार-चार प्रकार होते है । इस तरह कुल १६ प्रकार ध्यान के होते है। इनमें ८ भेद अशुभ ध्यान के है,जो कर्मबंध कराते है। शेष ८ भेद शुभ ध्यान के है,जो कर्मक्षय कराते है। निर्जरा कारक है। दुर्गति करानेवाले ध्यान भी है और सद्गति कारक ध्यान भी है। अब तो करने वाले पर आधार है, कि वह कौनसा ध्यान कैसे करता है ,कितना करता है । कितने प्रमाण में करता है। अतःआपकी गति ऊपरवाले के हाथ में नही है। ऊपर वाला ईश्वर किसी जीव को एक गति से दूसरी गति में न भेजता है,न ही ले जाता है। यह तो जीवों की अपनी लेश्याओं और ध्यान आदि पर आधारित है । आप जैसा ध्यान करोगे,जैसी

लेश्या रखोंगे,वैसी गति होगी । इसलिए आपकी गति आपके हाथ में है। आप चाहें तो सुधार भी सकते है,और आप चाहे तो बिगाड भी सकते है। जैसी आपकी करनी वैसी भरनी । जैसे जैसे आपकी लेश्या सुधरती जायेगी अशुभ से शुभ-शुभतर होती जाएगी फिर आगे..यदि शुक्ल लेश्या तक आप पहुंचते जाएंगे,आपकी गति निश्चित सुधरेगी और ऐसा भी मत सोचीए कि बस मृत्यु के अन्तिम समय लेश्या सुधर जायेगी तो चलेगा। जी नहीं। आज से प्रत्येक क्षण आप जागृत रहीए..अशुभ लेश्या आ भी जाय,तो उसका निवारण करीए और शुभ.. शुक्ल लेश्या लाने का, बस उसी में ही रहने का जीने का प्रबल पुरुषार्थ करीए । मति बदलने पर गति भी बदलती है । मति सुधरने पर गति भी सुधरती है । इसीलिए कहा है—'यथा मतिः तथा गतिः' जैसी आपकी मति होगी वैसी आपकी गति होगी । कही मिथ्या भ्रमणावश ऊपरवाले के हवाले छोडकर मत बैठ जाना।

ध्यान के इस स्वरुप को अच्छी तरह समझकर क्रमशः अशुभ ध्यान में से कैसे बचना ? कैसे बाहर निकलना,पहले इसके लिए प्रबल पुरुषार्थ करीए। फिर शुभ ध्यान में क्रमशः उत्तरोत्तर आगे कैसे बढना, कैसे आत्मिक विकास साधना, इसकी पुरुषार्थ अभ्यास करना चाहिए। सतत जागृत रहना चाहिए । आत्म भाव में जागृत रहना और कर्मक्षय का लक्ष्य बनाकर जीवन जीना चाहिए। इसी मे कल्याण है । चारों ध्यानों का विशद-विस्तृत स्वरूप तत्त्वार्थसूत्र आदि शास्त्रों से विशेष समझने का प्रयास करना उत्तम है।

0000000000000000000000000000000000000000000

नवपद ध्यान

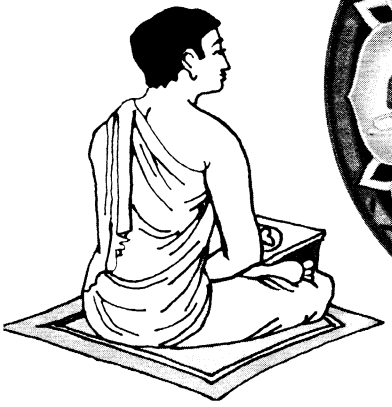

'श्री सिद्धचक्रं तदहं नमामि।' नवपदमय श्री सिद्धचक्र महायन्त्र को मैं नमस्कार करता हुं। साधक की साधना में जो सिद्धिदायक चक्र है, उसे 'सिद्धचक्र यन्त्र' कहा गया है। जो चक्र स्वयं सिद्ध है,वह सिद्धचक्र है। जिस चक्र में सिद्ध पद अन्तिम साध्य है,उसे सिद्धचक्र कहा है। जिस चक्र की यन्त्र के रूप में साधना करने से साधक स्वयं सिद्ध होता है, बनता है,उसे सिद्धचक्र कहा है। चरम लक्ष्य जो सिद्ध बनने का है,वह सिद्ध हो जाय जिसकी साधना से,उसे सिद्धचक्र कहा गया है। सर्व प्रकार की सामान्य सिद्धियों के सामने सिद्धत्व की प्राप्ति सर्वश्रेष्ठ चरम सिद्ध स्वरुप है।

अनन्तानन्त सिद्धियों की सिद्धियाँ जिस यंत्र के माध्यम से प्राप्त होती है वह सिद्धचक्र है ।जिसमें आचार्य,उपाध्याय और साधु अन्य कुछ भी नहीं बनना है,जो बनना है सो सिर्फ सिद्ध ही बनना है,ऐसा चक्र सिद्धचक्र है। या जिसमें अरिहन्त,आचार्य,उपाध्याय और साधु आदि सभी अन्त में सिद्ध ही बनता हैं ऐसा चक्राकार यन्त्रमय स्वरुप ही सिद्धचक्र है। एक-एक पद जिसके गुण-गुणी के स्वरुप में 'सिद्ध' है,वह सिद्धचक्रहै। जिसकी साधना से भूतकाल में अनन्त सिद्ध हुए, वर्तमान में महाविदेहादि क्षेत्र में सिद्ध हो रहे

है, तथा अनन्त भविष्य काल में भी होते ही रहेंगे,ऐसा यह चक्र सिद्धचक्र है। इसकी साधना-उपासना-पूजा-जप-ध्यानादि कई प्रकार से होती है।

देव-गुरु और धर्म की तत्त्वत्रयी इस सिद्ध चक्र में निहीत है,जो साधक के लिए सम्यग् दर्शन की प्राप्ति का साधन है,माध्यम है, ऐसे देव-गुरु-धर्म की त्रिपदी का नवपद के रुप में विस्तार सिद्धचक्र में है। अनन्तकाल में जो नहीं प्राप्त होता है,ऐसा सम्यग् दर्शन जिससे सिद्ध होता है,वह देव-गुरु-धर्मप्रधान नवपदमय सिद्धचक्र है। इसमें नौं पदों की व्यवस्था इस प्रकार है दो देव,तीन गुरु और चार धर्म,ऐसे नव पद है। देव-गुरु का संयुक्त स्वरूप में अक्षर कोई यंत्र है,तो वह सिद्धचक्र है। यह यंत्र रुप है, और नवकार यह महामंत्र स्वरुप है। दोनों में कोई ज्यादा लम्बा अन्तर नहीं है।

देव-गुरु के पांच परमेष्ठी भगवन्तों के वाचक ५ पद-मंत्र स्वरुप में और यन्त्र स्वरुप में दोनों में समान ही है। नवकार महामंत्र की दूसरी चूलिका गाथा में जो 'एसो पंच' के चार पद है उनमें नवपद के दर्शन-ज्ञान-चारित्र-तप के चारों पदों की अर्थात्मक ध्वनि ध्वनित होती है।

दो-देव— पहले अरिहंत और दूसरे सिद्ध भगवान। यहां देव शब्द स्वर्ग के देवी-देवताओं के अर्थ में नहीं है,परन्तु परमेश्वर-परमात्मा के अर्थ में है। अतः देवाधिदेव का संक्षिप्त स्वरुप है देव। इसलिए देव तत्त्व शब्द प्रयुक्त है।

तीन गुरु —(१)आचार्य माहराज, (२)उपाध्याय महाराज और(३) साधु महाराज । बिना गुरु के देव तत्त्व की तथा देव पद की प्राप्ति नहीं होती है। अतः गुरु पद की आवश्यकता सार्थक है। तीनों गुरु रुप में ही है। 'गु'का अर्थ अन्धकार और 'रु' का अर्थ है निरोधक-रोकनेवाला।इस तरह आत्मा के अज्ञानरुपी अन्धकार को रोकनेवाले 'गुरु' कहलाते हैं। अज्ञान के अन्धकार को रोककर,ज्ञान के प्रकाश को फैलाने वाले,सम्यग् ज्ञान के अञ्जन से नेत्र खोलनेवाले-नेत्रोद्घाटक,नेत्रांञ्जन करनेवाले गुरु होते हैं। इसीलिए गुरु स्तुति में सार्थक शब्द रचना में स्पष्ट कहा गया है कि—

अज्ञान तिमिरान्धानां-ज्ञानाञ्जन शलाकया।
नेत्रोन्मिलितं येन,तस्मै श्री गुरवे नमः।।

अज्ञान रुपी अन्धकार से जो अन्ध बन चुके हैं,ऐसे संसारी जीवों के नेत्र सम्यग् ज्ञानरुपी अन्जन से खोलने वाले जो होते हैं वे गुरु कहलाते हैं। उनको नमस्कार

हो। नवपद में तीन गुरु है। आचार्य और उपाध्याय तो उनके कार्यक्षेत्र के अनुरुप डिग्रियां-पदवीयां है,जबकि साधु यह साधक पद विशेष है। गुरु के रुप में तीनों का कार्य एक ही है। वह है नेत्रोन्मिलन। नेत्रोद्घाटन,नेत्राञ्जन,सब समानार्थक है।

चार धर्म— ज्ञान,दर्शन,चारित्र और तप ये आत्मा के प्रमुख ४ गुण है। ये कर्मावरण से ग्रस्त है,अतः इनका प्रगटीकरण अन्दर से ही करना है। लेकिन प्रगट कब होंगे? आवरणरुप कर्मो का नाश होगा,तब ही संभव होगा,और कर्मावरण का नाश एक मात्र धर्म से ही होगा। अतः आत्मा के ही इन ज्ञान-दर्शनादि चारों गुणों के अनुरुप आचरण रुप धर्म करने से ही प्राप्ती हो सकती है। इसके बिना संभव नहीं है। अतः ये ही गुण धर्म के रुप में आचरण में लाए जाते हैं। गुणी के साथ गुण भी पूजनीय बनते हैं। अतः ऐसे ज्ञान दर्शन,चारित्र और तप इन चारों गुणों को स्थान दिया गया है।ऐसे चार गुण और पांच गुणी मिलकर नौं पद का चक्राकार यन्त्रात्मक स्वरुप यह नवपदजी तथा सिद्धचक्र उभयरुप में है। इसकी साधना-उपासना उभय लक्षी है। भूतकाल में जो आत्माएं अरिहन्त-सिद्धादि हुई हैं,उनकी है तथा वर्तमान में जो पंच परमेष्ठीमय है,उनकी है और जो भविष्य-अनागत काल में साधक-खुद ही वैसा सिद्ध स्वरुप बनता है। अतः ऐसे नौं पदों की-नवपदजी की उपासना-साधना करनी है। अतः एक दृष्टि से देखा जाय,तो अपनी खुद (स्वात्मा) की साधना है। हम वर्तमान में साधक स्वरुप में है। उत्तम साधना तो उसे ही कहते है,जिसमें साध्य की साधनों से साधना करता हुआ साधक अन्त में जाकर एक दिन स्वयं साध्यरुप बन जाय अर्थात् स्वयं सिद्ध बन जाय। अतः साधना अपूर्ण को पूर्ण बनाती है,अज्ञानी को ज्ञानी बनाती है,रागी को वीतरागी, पामर को परम,और संसारी को सिद्ध बनाती है। साध्य को सिद्ध करें वह परिणामलक्षी साधना है। 'सिद्ध'चक्र नामकरण ही परिणामलक्षी नाम है। अतः यह नामकरण ही परिणाम की प्रेरणा अन्दर से देता है।

स्थापना— सर्व प्रथम श्री सिद्धचक्र यन्त्र को या 'नवपदजी' के यन्त्र की या उसके चित्रपट की सन्मुख उच्चासन पर स्थापना करीए। तीन नवकार से आप स्थापना कर सकते हैं। दर्शन-पूजा करीए। वांसक्षेप पूजा,चंदन पूजा, धूप-दीप पूजादि करीए।

शुद्धि— १) अंग,२)वस्त्र ३)मन ४)भूमि ५)पूजा के उपकरण,६) न्यायोपार्जित शुद्ध द्रव्य और ७) विधि क्रमादि की सातों प्रकार की शुद्धि का ख्याल रखें। अंगशुद्धि स्नानादि से होती है। शुद्ध श्वेत धौत वस्त्र धारण करके उनी गरम आसन बिछाकर साधना करने बैठें। (पूजादि के पश्चात् अब सामायिक लेकर बैठ सकते हैं। क्योंकी पुनः कोई पूजादि बीच में वापिस नहीं करनी है।)

स्तुति— नवपदजी, सिद्धचक्रजी की गुणात्मक स्तुति पाठ से प्रार्थना करें। भाषा माध्यम संस्कृत-प्राकृत हिन्दी गुजराती कोई भी हो,उससे कोई मतलब नहीं है। भाववाही हो,अर्थ-भावार्थ सहित आप बोल सकें,यह जरुरी है।

आसन— कम से कम तीन या नौं खमासमणे (पंचांग प्रणिपात) पूर्वक नमस्कार करके, आसन बनाकर स्थिर बैठें। अर्ध पद्मासन,पूर्ण पद्मासन, वज्रासन,सिद्धासन आदि में से जो भी अनुकूल लगे,ऐसे किसी भी एक आसन में स्थिर होकर बैठें। रीड की हड्डी सीधी सरल हो। अब आगे की पूरी साधना इसी आसन में होगी। आसन का हेतु है स्थिरता बनाकर रखना। कायिक स्थिरता रहेगी,तो मन की मानसिक स्थिरता में भी सहायता काफी मिलेगी।

संकल्प— प्रथम दोनों हाथ जोडकर मानसिक दृढसंकल्प करें।"आज.. इस तिथी ..वार.. तारीख.. को मैं यहां.. नवपदजी-सिद्धचक्रजी की जाप ध्यान साधना करने बैठा हुं। तन-मन-भाव से जो और जितनी साधना मैं करुंगा.उससे एक मात्र मेरे कर्मों का क्षय हो,पाप कर्म धुलकर नष्ट हो,मेरी आत्मा पाप कर्म रहित शुद्ध-विशुद्ध बने। बस,निर्जरा का एक मात्र लक्ष्य हैं। इस साधना में मैं नवपदमय,सिद्धचक्रमय बन जाउं।" ध्यान रखें,अन्य कोई क्षुद्र विचार बीच मन में आ न जाय। भौतिक-पौद्गलिक-सांसारिकऐसे क्षुद्र विचार बीच में घुसकर संकल्प को कमजोर न बना दे,यह ध्यान रखना चाहिए।

अंगन्यास पूर्वक— 'ॐ परमेष्ठी नमस्कारं' के वज्रपञ्जर स्तोत्र को बोलते हुए अपने मस्तक, मुंह,बाहु-हाथ,पैरादि अंगों पर एक एक पद का न्यास करते जाइए और अर्थ के अनुरुप भाव बनाते जाइए। पूरे नवकार के नौं पदों के साथ एक वज्रमय कवच बन जाएगा। जैसे चारों तरफ से अभेद्य किल्लें में आप सुरक्षित बैठें हैं और बख्तर धारण किये हुए,एक योद्धा की तरह वीर बनकर अपने आपको सुसज्ज अनुभवीए।जी.. हां किसी के साथ लडने नहीं जाना

है,परन्तु अपनी आत्मा के ही अनन्त काल के शत्रु कर्मों के समूह के सामने आतमराम अकेला वीर योद्धा बनकर लाखों करोंडों कर्मो की फौज के सामने लडने तैनात होना है। 'विदार्यति कर्म शत्रुनिति वीरः', जो कर्मरुपी शत्रुओं को नष्ट करता है,वह वीर है।'' इस तरह चारों तरफ जलतें हुए अंगारोंवाली खाई के बीच वज्रमय किले के बीच,लोहमय बख्तर सुरक्षा कवच धारण किये हुए मैं स्थिर बैठा हुं। मेरे उपर चारों ओर नवकार के नों पदों की स्थापना है,जिससे मैं स्वयं नवपदमय-नवकारमय हुं। अब कोई नया कर्म आकर मुझेलग ही नहीं सकता है। मन से मानसिक विचारात्मक नया कर्म अन्दर प्रवेश ही नहीं कर सकता है। इसी तरह न किसी भूत-प्रेतादि के प्रवेश करने की कोई ताकत है। संभावना ही नहीं है।'' याद रखिए,यह देह-रक्षा स्तोत्र नहीं है,आत्मरक्षा स्तोत्र है। देह-शरीर को कर्म नहीं लगते हैं। देह तो जड पुद्गल का बना हुआ,नाश्वत पौद्गलिक पिण्जड मात्र है। यह तो जलकर भस्म हो जाने वाला है। चेतनात्मा शाश्वत है। कर्म आत्मा को ही लगते है। अतः आत्मा की ही रक्षा करनी है। वह भी कर्मों से,पाप कर्मों से रक्षा करनी है। देह-शरीर की रक्षा तो बहुत की, बहुत बार की। पाप-कर्म न लग जाय इससे आत्मा की रक्षा ही सही रक्षा है। अतः यह आत्म रक्षा कारक सुरक्षा कवच है।

जप— सर्व प्रथम शान्त चित्त से नवकार महामंत्र की पक्की एक माला गिनते हुए १०८ बार जप करें। फिर नवपदजी के मंत्राक्षरों का जप करें। यदि समय कम हो,तो संक्षिप्त स्वरुप में एकाक्षरी मंत्र का -' ॐ ह्रीँ श्रीं अ-सि-आ-उ-सा-द-ज्ञा-चा-तेभ्यो नमः।'१०८ बार (१ माला) जप करें । माला न हो तो शंखावर्त,नंद्यावर्त की विधि के क्रम से भी जप कर सकते हैं। पूर्णाक्षरी मंत्र 'ॐ ह्रीँ श्रीं अरिहन्त-सिद्ध -आचार्य -उपाध्याय-साधु-दर्शन-ज्ञान-चारित्र-तपेभ्यो नमः।'है। मन्त्र प्रभाव और जपप्रभाव दोनों का लाभ मिलता है।

प्राणायाम— वज्रासन-अर्ध या पूर्ण पद्मासनावस्था में बायां हाथ बांए घूटनें पर सीधा स्थिर रखें। दाहिने हाथ की हथेली उल्टीकरके दाढी के पास ले जाकर,किस स्वर से श्वास निकल रही है इसका परीक्षण करें। उसे दाहिने हाथ का अंगुठा और अनामिका अंगूली का चिमटा जैसी मुद्रा बनाकर अनामिका अंगुली बांए नासारन्ध्र को और अंगूठा दाहिने नासारन्ध्र के पास लाईये । आंखे बंद करके जिस नासिका से श्वास बाहर निकलती हो,उसे उस तरफ की

अंगुली (अनामिका या अंगूठा) से बंद करके दूसरी नासिका से बहुत ही धिरे-धिरे श्वास अन्दर लेते जाइए । जबरदस्ती न करते हुए लम्बी से गहरी - दीर्घ श्वास अन्दर लेते जाइए। श्वास नाक की आन्तरिक दिवालों को स्पर्श करती हुई धिरे-धिरे अन्दर आती है। ठंडा स्पर्श अनुभव में आ रहा है। उसके साथ ही साथ ॐ कार का होठ,जीभ हिलाए बिना मन ही मन उच्चार करते जाईए। जितना समय श्वास लेने में लगे उतना ही पूरा समय ॐ के उच्चार में भी लगना चाहिए। इतना लम्बा करें कि ३० सेकन्द लगे। बस,फिर श्वास पूरी होने के पश्चात् वह रन्ध्र बंद करके, दूसरे नासिकारन्ध्र से श्वास छोडिये। छोड़ते समय ह्रीँ का मानसिक उच्चार करें। उच्छ्वास और ह्रीँ उच्चारण का समय सरीखा होना चाहिये। दूसरी बार यह प्रक्रिया करते समय,पहले प्रक्रिया में जिस नासिकारन्ध्र से श्वास बाहर निकाली थी,उससे फिर लेनी है। इस तरह क्रम से कम से कम नौं बार ॐ और ह्रीँ का ही उच्चार मन में करते हुए दीर्घ प्राणायाम करते जाइए। सिर्फ ९ से १० मिनीट का ही समय लगेगा। लेकिन बहुत ही फायदा होगा। इस प्रक्रिया से करने पर एक भी अन्य विचार नहीं आएगा। मन श्वास पर स्थिर होता जाएगा। क्योकि मन से मानसिक स्तर पर ही ..उच्चार करना है । होठ जीभ बिल्कुल हिलाने ही नही है। पञ्च परमेष्ठी भगवन्तों का समान रुप से संयुक्त वाचक ॐ है। अतः ॐ कारोच्चार पूर्वक जब श्वास अन्दर आती है। तब ऐसा अनुभव मानसिक स्तर पर करीए कि पांचो परमेष्ठी भगवन्तों के विशुद्धतम परमाणुओं का पुञ्ज मुझे मिल रहा है। उनकी सीधी कृपा इस माध्यम से प्राप्त हो रही है। मेरे आत्म प्रदेशों में काफी अच्छी शुद्धि होती जा रही है।

श्वास निरीक्षण—

अब धिरे धिरे अपनी स्वाभाविक श्वास पर आइए। श्वास काआवगमन अपने आप स्वाभाविक हो जाएगा। अब आपको श्वास लेने और छोडने में कोइ प्रयत्न नही करना हैं । अपने आप सहज स्वाभाविक जो श्वास चल रही है। सिर्फ उसे देखने पर ही स्थिर होते जाइए । जी..हां.मन को नाक के अग्रभाग नोक पर लाकर स्थिर रखिए। दोनों नासारन्ध्रो के बीच मानो प्रहरी के रुपमें खडा रहें। श्वास अन्दर जा रही है ,कितनी अन्दर, कहां तक जा रही है? बस, पूरी तरह आप देखते रहिए। श्वास दर्शन की इस क्रिया

के साथ स्पर्श का अनुभव करीए.. आती हुई श्वास का शीतल स्पर्श है और बाहर निकलती हुई श्वास का उष्ण स्पर्श है ,ऐसा आपको महसूस होना चाहिए। बस, पूरी तरह श्वास के आवगमन का निरीक्षण एकाग्रता पूर्वक करते ही रहें और कुछ भी नही करना है। जैसे जैसे आप श्वास निरीक्षण की क्रिया पर केन्द्रित होते जाएंगे, वैसे वैसे मन शान्त होता जाएगा। दुसरे विचार आने अपने आप शान्त हो जाते है। जहां तक आपकी एकाग्रता बनी रहे, वहां तक आप श्वास निरीक्षण पर स्थिर रहे। (जी ..हां.. यह ध्यान नही है । यह ध्यान मे प्रवेश की प्रथमावस्था है । मन शान्त करने की प्रक्रिया है । संवर की प्रक्रिया है ।अतः कमाश्रव का निरोध होता है । निर्जरा तो बाद मे ध्यान मे विशेष होगी ।)

ध्यान— अब धिरे-धिरे नवपद -सिद्धचक्र की आकृति बंद आंखों के सामने उपसाइए ,और स्पष्ट करते जाइए । जैसे ही स्पष्ट दर्शन होने लग जाय.. आ..हा.. आनन्द व्यक्त करीए। चकमते हुए हीरों का बना हुआ है, इतने तेज के साथ चमक रहा है ,यह देखते देखते आप आनन्द विभोर होते जाएंगे। बस..सहज.दर्शन करते जाइए। अष्टदल कमल की आठ पंखुडियों में एक मे परमेष्ठी भगवन्तो की चित्राकृति अंकित है ।नीचे मन्त्राक्षरों में पदवाची नाम है। स्पष्ट देखते जाइए।

आइए ! सर्व प्रथम केन्द्र मे कर्णिका के भाग पर ध्यान दिजिए। श्वेत वर्ण के बीच अष्ट प्रातिहार्यातिशय युक्त अरिहन्त परमात्मा ध्यानस्थावस्था मे बिराजमान है। दोने तरफ चामरधारी चामर झुला रहे है। उपर शिर छत्रादि है । सिंहासन पर बिराजनमान है । उपर अशोक वृक्षादि है ध्यानस्थ अरिहन्त परमात्मा की प्रतिमा श्वेत वर्ण में हीरो की तरह चमक रही है ,जिससे निकलती किरणें आपके उपर आ रही है। और अरिहन्त परमात्मा के जी भर कर दर्शन करते ही जा रहे है। ''आनन्द ही आनन्द आ रहा है । आ..हा.. राग-द्वेष-से सर्वथा मुक्त, कर्म रहित शुद्ध परमात्मा इनकी असीम कृपा करुणा मेरे ऊपर बरस रही है। मैं पावन ०पवित्र धन्य धन्य होता ही जा रहा हुं। मेरे भी राग द्वेष कर्म कटते जा रहे है। अनन्तानन्त ऐसे अरिहन्तों को अनन्तबार नमस्कार हो। १२ गुणों से सुशोभित अरिहन्तों को नमस्कार हो ।''

मुख्य दिशा की सन्मुख पंखुडी पर सिद्ध शिला पर बिराजित सिद्ध परमात्मा की चित्राकृति है । अभी अभी संसार के कर्म बंधन से मुक्त होकर पधारे है । कर्म फल को जलाकर भस्म करते हुए लाल-रक्तवर्णा दिखाई दे रहे है । प्रकाश पुंन्ज है, लोकान्त में बिराजमान है।अब कोई हाथ पैरादिक चित्राकृति तो है नही। शुद्ध-विशुद्ध आत्मा है सिर्फ , सर्व कर्म फल रहित-सर्व गुण सम्पन्न सिद्ध भगवन्तो की असीम कृपा-करुणा स्वरुप उनके निकलती तेज किरणों में मै स्नान कर रहा हुं। मेरे कमाणु जलकर भस्म हो रहे हैं । सिद्धोऽहं , बुद्धोऽहं, मुक्तोऽहं.., की धारा मे स्वयं अपनी आत्मा को भी तदाकर तद् स्वरुप मे देखते जाइए। आठ गुणों को देखिए

बायी तरफ की कमल पंखुडी में आचार्य भगवन्त है। उदित सूर्य की तरह तेजस्वी, पीतवर्णा आचार्य भगवन्त को देखिए। प्रवचन मुद्रा मे बिराजमान है। आत्मकल्याणकारी देशना देते हुए, सुवर्ण कमल पर बिराजमान है। उनकी तरफ संपूर्ण ध्यान लगाकर केन्द्रित होने का प्रयन्त करें। ध्यान में देशना के शब्द श्रवणपथ पर आते जाएंगे । ३६ गुणों से सुशोभित जिन शासन के धूरि संघ नायक सूरीश्वर से निकलती हुई पीली किरणें मुझे भर रही है।

नीचे की कमल पंखुडी में हरे-भरेउद्यान मे बैठे हुए उपाध्याय महाराज शिष्यों को पढा रहे है। वाचना दे रहे है।ऐसे वाचक मुख्य महान पाठक वर्य का प्रणाम करते जाइए। बस उनके पच्चीस गुणों की तरह अनन्त व्यक्त करीए कोइ अनोखा स्वरुप है।उपाध्यायजी की असीम कृपा में परमानन्द अनुभवीए।

दांई तरफ की कमल पंखुडी पर साधु मुनिराज बिराजमान है। संसार से महाभिनिष्क्रमण करके आए है। अभी कर्मो के काले-श्याम रंग से अशुद्ध है, लेकिन अपनी जप-ध्यान-ज्ञान साधना करते हुए प्रतिक्षण कर्मो की कालिमा को काटते ही जा रहे है। सिद्धि के सच्चे साधक बने हुए ये मुनि महात्मा तप-तपश्चर्या करनेवाले महान तपस्वी-ज्ञानी है। इनका तप-तेज हमारे पाप कर्मो को भी नष्ट करता जाता है। सत्तावीस गुणों के उपासक ऐसे महाव्रती साधु सन्तों की संगत सत्संग सैंकडो पाप हरते है। बस, इनकी शान्ति का अनुभव आप करीए ।

देवाधिदेव-अरिहन्त और सिद्ध दो भगवान एवं आचार्य, उपाध्याय और साधु तीनों गुरु मिलाकर पांचों परमेष्ठी भगवन्तों का ध्यान करते जाइए। ऐसे गुणी भगवन्तों के गुणों की पूर्ण अनुमोदना करीए। समर्पण भाव से शरण स्वीकारीए। अब गुण पदों में प्रवेश करीए।

दर्शन पद — गुणी के पश्चात् गुणों का स्वरुप दृष्टि पथ में लाना है। गुण गुणी का अभेद संबंध है। गुणी के बिना गुण नहीं रहते हैं। वैसे ही गुणों के बिना गुणी भी नही रहते हैं। ''मै भी एक गुणी हुं। 'सोऽहं' जो अरिहंत-सिद्धादि है, वही मैं भी हुं। ठीक वैसा ही हुं। सत्तागत अस्तित्व में कोई अन्तर नही है। सारा स्वरुप समान है। बस, उन्होंने-पंच परमेष्ठीयों ने अपने गुणों पर के कर्मावरण हटा दिये है, क्षय-संपूर्ण नाश कर दिये हैं, अतः सब गुण पूर्ण रूप से प्रगट हो चुके हैं। और मैनें अभी मेरे कर्मावरणों के बादल 'प्पणासणो'-नष्ट नहीं किये है। मेरे सभी गुण कर्मावरणों से दबे हुए-ढके हुए हैं। द्रव्य का अस्तित्व है अतः गुणों का भी संपूर्ण अस्तित्व है। सिर्फ कर्मावरण के भार तले दबे हुए-ढके हुए है। वे गुण हैं १)दर्शन २)ज्ञान ३) चारित्र और ४) तप (वीर्य)।''

गुण शुद्ध स्वरुप में है, अतः सभी श्वेत, शुभ वर्ण के हैं। पूर्ण चन्द्र के रुप में, शुद्ध तेजपूर्ण आत्मस्वरुप को देखिए। सम्यग् दर्शन का गुण उसमें परिपूर्ण है। समस्त लोकालोक स्वरुप अखिल ब्रह्माण्ड का यथार्थ-वास्तविक स्वरुप देखने का अनन्त दर्शन गुण है। आत्मा गुणात्मक पिण्ड स्वरुप द्रव्य है।

ज्ञान गुण — विदिशा में आचार्य और उपाध्याय की कमल पंखुडी के मध्य की कमल पंखुडी में ज्ञान पद की स्थापना है। आत्मा ज्ञानमय है। अनन्त ज्ञान ये गुण है।

ज्ञान से ही सभी ज्ञानी है। अनन्त चराचर विश्व के अनन्त ज्ञेय पदार्थो का ज्ञान-जानता है। तीनों काल के अनन्त पदार्थो को एवं उनके गुण-पर्यायों को जानता है। ''मैं ऐसे अनन्त ज्ञान से परिपूर्ण-सम्पूर्ण तत्त्व हुं।'' सम्यग् ज्ञान गुण को देखिए।

चारित्र गुण— आत्मा अनन्त चारित्र गुणमय है। इसके अन्तर्गत क्षमा, समता, नम्रता, सरलता, सन्तोष, दया, करुणा, गंभीरता, विनय, विवेक, मैत्री आदि अनन्त गुणों का समूह है। इन सबका पिण्डिभूत नाम सम्यग् चारित्र है।

शुद्ध-श्वेत-शुभ्र वर्ण है। "आ..हा.. हा.. नवपद का यह गुणात्मक स्वरुप वास्तव में मेरा ही स्वरुप है,इन सब राग-द्वेष से परे मैं वीतरागी हुं।" अपने आप को वर्तमान क्षण में वैसे परमात्म स्वरुप में अनुभव करना है,देखना है। बस,सर्वथा राग-द्वेष रहित संपूर्ण वीतरग स्वरुप में सर्व गुण सम्पन्न स्वरुप में,देखना है,मानना है। सही अर्थ में सोऽहं .. का स्वरुप अनुभव करना है।

सम्यग् तप— आत्मा का एक गुण है,अनन्त वीर्य-अनन्त शक्ति। अनन्त काल के इस अनन्त संसार में हमने आत्मा की अनन्त शक्ति का उपयोग शारीरिक, मानसिक, वाचिक आदि स्वरुप में किया है। अब इस अनन्त शक्ति का आत्मगुणों के प्रगटी करण के लिए ही उपयोग करना है। और यह तप के माध्यम से ही उपयुक्त हो सकता है। छे (६) बाह्य और छे आभ्यंतर ऐसे बारह प्रकार के तप है। वे कर्म क्षयकारक है,निर्जरा कराते हैं,आत्म शुद्धिकारक है। इसमें उपवास -ज्ञान-स्वाध्याय ध्यानादि सब प्रकारों का समावेश होता है। यह आत्मगुण है,देह गुण नहीं है। अपने आपको अनन्त वीर्य-शक्तिवान,तपोमय-तपोबल युक्त देखना,वैसा अनुभव करना,यही विशेष महत्व का है।

इस तरह इन दर्शन-ज्ञान-चारित्र-तपादि गुणवान स्वरुपमय अपने आप को देखना है,अनुभव करना है। ये गुण सभी आत्माओं के है। परमात्मा के भी ही है,और हमारे जैसी पामरात्मा के भी ये ही है। गुणासाम्यता पुरी है। अन्तर है,तो कर्मावरण का। स्वात्म स्वरुप को इन गुणमय स्वरुप में अनुभवना है। ये ही गुण है,जो गुणी-गुणवान बनाते है।

ऐसे नवपदमय स्वरुप में अपने आप को देखना है। नवपदों को गुण-वर्णादि स्वरुप में ध्यानपथ में केन्द्रित करना है। ध्येय-विषय नवपद का-सिद्धचक्र का है। स्वात्मो पयोग को तदाकार करना है। ध्यान में अपना ही उपयोग ध्येयाकार हो जाता है। हो जाय तो ही तदाकारता तल्लीनता, तद्रुपता, तन्मयता आ सकती है। विषयान्तर - ध्येयान्तर नही होना चाहिए। एक ही विषय पर स्थिरता रखकर ध्यान की धारा प्रवाहित होने दीजिए। नवपद की सीमा के बाहर ध्यान चला जाय तो ध्यानान्तर-विषयान्तर हो जाता है। अब ऐसी स्थिति में या तो पुनः मूल विषय में क्षणभर में ही हो जाना उचित है।फिर भी यदि पुनः अनुसंधान जुडना संभव ही न हो तो ध्यान पूर्ण करके बाहर आ सकते हैं,और यदि अनुसंधान क्षणभर

में ही हो जाता हो तो ध्यान की धारा को पुनः अखण्ड कर सकें तो जरूर चालु रखिए। आनन्दानुभूति भी अखण्ड चलनी चाहिए।समय से कोई मतलब नहीं है।अनुभूति से,विषय की अळण्डितता से मतलब है। सभी अन्य विषयों की चिन्ता छोडकर या भूलकर वर्तमान में नवपद का जो विषय ध्यानान्तर्गत चल रहा है। इसी विषय का अखण्डोपयोग रहना चाहिए। तथा उसकी पूर्ण एकाग्रता बनी रहे यही द्यान है।ध्यान का लक्षण बरोबर घटित होता है,रहा सवाल कालावधि का। 'आमुहूर्तात्' तत्त्वार्थ सूत्र के इस सूत्र में एक अखण्ड ध्यान का विषयान्तर व होते हुए जो ध्यान संपूर्ण एकाग्रता पूर्वक चले उसे ध्यान कहते हैं। जी...हां मात्र इतने ही भ्रम में मत रहना कि सिर्फ विचारशून्य हो जाना ही ध्यान है। जी, नहीं । हां...अन्य विषयों के विचार शून्य जरूर होना है। लेकिन अभिप्रेत विषय,ध्येयानुरूप विषय के विचारों का विषय की लक्ष्मण रेखा में विचार अवश्य चलने ही चाहिए। विषयान्तर न हो,यह लक्ष्य जरूर रखें। इसप्रकार चिन्ताओं के जो सांसारिक सेंकडों विषय है,तथा तद् जन्य जो चिन्ताएँ हैं वे कहीं से भी बीच में न घीस जाय इसकी सावधानी पूरी रखें। इसके लिए एकाग्रता कहा है। अन्यथा विक्षेप बाधक है। ध्यान में अवरोधक होते हैं। इसलिए साधना के समय साधक को ज्यादा सावधान रहना पडता है।

उपरोक्त विवेचन ध्यान स्वरूप समझने के लिए सहयोगी है। भ्रान्ति निवारक है इसलिए विवरण दिया है। जरूर ध्यान में लें।

निष्कासन — धिरे धिरे पुनःअपनी स्वाभाविक श्वास पर आईए,और गौर से अवलोकन करीए। बस, सर्वथा निष्क्रिय होकर श्वास निरीक्षण करने पर केन्द्रित होते जाईए। हां...शान्ति का अनुभव करते रहीए। पांच मिनिट की कुछ क्षण श्वास निरीक्षण पर बिताईए। मन को मात्र श्वास

दर्शन का कार्य सोंपकर आत्मोपयग अन्य सभी विषयों से मन को लीजिए। श्वास आवागमन जो चलता है, उसे मन देखता रहेगा। अन्य विचार रूक जायेंगे। संवर का कार्य होगा। मन चिन्तारहित शान्त होता जायेगा।

दीर्घ श्वास —धिरे धिरे दीर्घ-लम्बी श्वास लीजिए और छोडीए। सिर्फ पांच मिनिट ही लेना है। पूरे
शरीर में श्वास भरती जाएगी । प्राणवायु का संचार सर्वत्र होगा। पुनः आपकी चेतवा लौट आएगी। आप कहां बैठे हैं ? स्थान कौनसा है? इसका पुनः स्मरण करीए। लम्बा उच्चार करीए।सिर्फ पांच बार लम्बी -गहरी श्वास लेकर छोडते समय का लम्बा उच्चार करीए।ओं की ध्वनी से सारा वातानरण गुंज उठेगा। पवित्रता चारों तरफ प्रसरेगी। पुनः शान्त होते जाईए। हाथ जोडीए... विश्व कल्याण की प्रार्थना— समस्त जगत् के सभी प्राणिमात्र का कल्याण हो,ऐसी शुभ प्रार्थना करीए। 'शिवमस्तु सर्व जगतः' इत्यादि से।

धिरे धिरे दोनों हाथ की हथेली रगडते हुए...हंसते हुए चेहरे के साथ... आँखें खोलिए। शान्तिः शान्तिः शान्तिः। आसन खोलिए।
उठकर नवपदी समक्ष पंचांग प्रणिपात पूर्वक तीन खमासमणें दीजिए। नमस्कार करीए। अविधि आशातना हेतु क्षमायाचना करीए। ध्यान की पूर्णाहूति।

सर्व मंगल

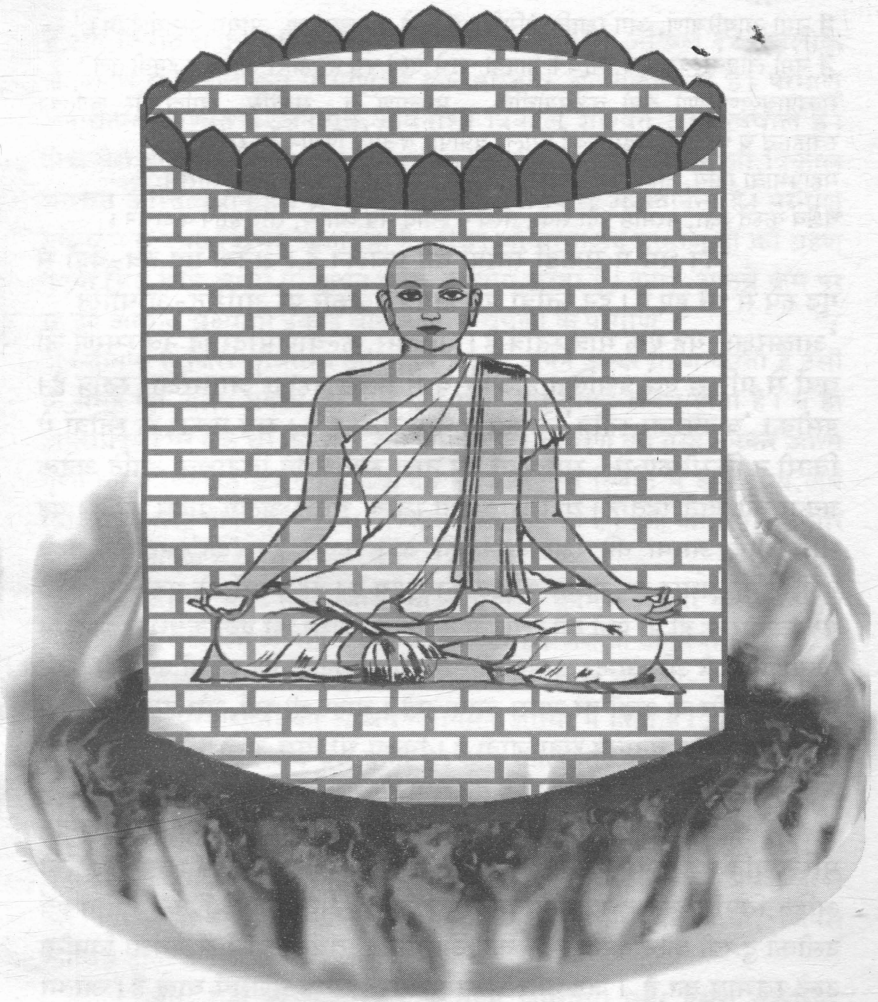

वज्रपञ्जर स्तोत्र में— आत्म रक्षा ध्यान

—''ओत्मरक्षाकर वज्रपञ्जर स्तोत्र ''—

ॐ परमेष्ठि नमस्कारं, सारं नव पदात्मकम्, आत्मरक्षाकरं वज्र, पंजराभं स्मराम्यहम् ।
ॐ नमो अरिहंताणं, शिरस्कं शिरसि स्थितं, ॐ नमो सव्व सिद्धाणं, मुखे मुखपटं वरम् ।

ॐ नमो आयरियाणं, अंग रक्षातिशायिनि, ॐ नमो उवज्झायाणं, आयुधं हस्तयोर्दृढम्।
ॐ नमो लोए सव्वसाहूणं, मोचके पादयोः शुभे,एसो पंच नमुक्कारो,शिला वज्रमयी तले
सव्वपावप्पणासणो वप्रो वज्रमयोर्बहिः, मंगलाणं च सव्वेसिं, खादिरांगार खातिका
स्वाहान्तं च पदं ज्ञेयं, पढमं हवई मंगलं, वप्रोपरि वज्रमयं पिधानं देह रक्षणे...
महाप्रभावा रक्षेयं, क्षुद्रोपद्रव नाशिनी, परमेष्ठि, पदोद्भूता, कथिता पूर्व सूरिभिः ...
यश्चैवं कुरुते रक्षां, परमेष्ठि पदैः सदा, तस्य न स्याद् भयं व्याधि, राधिश्चापि कदाचन।

जैन धर्म में सेकडों स्तोत्रों का प्रचलन है। अनेक मंत्र तंत्र-यंत्रों से गूढ रुप से भरे हुए है। इन स्तोत्रों में महामंत्र नवकार पर आश्रित-आधारित 'आत्मरक्षा' यह एक मात्र स्तोत्र है। भक्तामर,कल्याणमंदिरादि नव स्मरण जो वर्षो से प्रसिद्ध एवं प्रचलित है,उन सब में सबसे पहला'आत्मरक्षा' स्तोत्र है। इसीका 'वज्रपञ्जर स्तोत्र' के रुप में नाम प्रसिद्ध है। सब प्रकार के स्तोत्रों मे किसी न किसी रुप मे.. सप्त भयों का नाश,सर्व भीति विनाशक आदि अनेक प्रकार की बाते रहतीहै। यही आत्मरक्षा स्तोत्र सबसे अलग प्रकार का है। यह सीधे-सीधे आत्मा की रक्षा करने की बात करता है। 'देह'रक्षा का लक्ष्य नहीं,अपितु प्रधान रुप से आत्म रक्षा का लक्ष्य है। देह -शरीर के एक-एक अंगो पर नवकार के ही नौं पदों की स्थापना करके पूरे शरीर को एक कवच में स्थापित किया जाता है और अन्दर आत्मा की रक्षा हो,यह लक्ष्य है। इन नौं पदों को प्रहरी की तरह शरीर के अङ्गों पर न्यास करके रखें। बाहर भी रखें,और इस तरह चारों तरफ एक किल्ला बनाकर रखा जाता है। किल्ला भी ऐसा अभेद्य,कि कोई इसका भेदन न करे और अन्दर प्रवेश ही न कर पाए।

'अरि'शब्द का सीधा अर्थ है — 'शत्रु'। बाह्य जगत् में हिन्दु-मुस्लिमादि शत्रु भाव से समझे जाते हैं। लेकिन यहां आत्मा के शत्रु कौन? जो अहित,विपरित करे,दुःखी करे वह शत्रु होता है। आत्मा के अहित-विपरित एवं उसीको दुःखी कौन करता है ? कर्म आत्मा के स्वयं के गुणों से सर्वथा विपरित उल्टे स्वभाव का है । जड और चेतन परस्पर विरोधी गुणधर्म वाले है। आत्मा चेतन है,ज्ञान-दर्शनादि गुणमय है ,सुख दुःख की संवदेना अनुभव करने वाला है तथा द्रव्य स्वरुप से एक अखण्ड -असंख्य प्रदेशी पिण्ड रुप है। जबकि पुद्गल-परमाणु अचेतन-जड पदार्थ है। सर्वथा ज्ञान,दर्शनादि चेतना रहित है। वर्ण-गंध रस-स्पर्श युक्त है,सुख-दुःखादि अनुभव रहित है,इसलिये किसी भी प्रकार की वेदना-संवेदना कुछ भी नहीं है। परमाणुओं के संघात से स्कन्ध रचना होती

है,और विघात से पुनःपरमाणु स्वरुप में परिवर्तित होते हैं। अखिल १४ राजलोक क्षेत्राकाश में अनन्तानन्त परमाणुओं का अस्तित्व अनन्तकाल से है। परमाणु अनाद्यनन्त शाश्वत है ,अनुत्पन्न,अविनाशी त्रिकाल शाश्वत अस्तित्ववाले है। ठीक वैसे ही चेतन आत्मा भी अनाद्यनन्त कालीन अनुत्पन्न,अविनाशी,त्रिकाल शाश्वत अस्तित्ववान् है । जगत् में स्वतंत्र संख्यारुप से अनन्तानन्त है। परमाणु मुख्यरुप से आठ विभिन्न प्रकार के है। चेतन जीवात्मा इन परमाणुओं को ग्रहण करके भिन्न भिन्न रुप से परिणमन करके उपयोग करता है। इनमें आठवे क्रम पर रहे हुए अत्यन्त सुक्ष्मतम ईकाई वाले कार्मण वर्गणा के परमाणु
अनन्तानन्त है,जिसे जीवात्मा आश्रवित करके अपने अन्दर ग्रहण करती है उसी के समूह का आत्म प्रदेशों के साथ एक रसी भाव होकर संबंध होता है। वे ही आत्मप्रदेशों पर एक थर की तरह जम जाते है,जो आवरण की तरह बनकर आत्म गुणों को आच्छदित कर देते है,ढक देते है। फिर ऐसी स्थिति में कर्म जन्य,कर्म मिश्रित विपरित दोष-दुर्गुणों का निष्कासन बाहर होता है। इन्हे कर्मरिपु -कर्मारि आत्मशत्रु के रुप में पहचाने जाते है।

आत्मा के उपयोग भाव की जागृती में कार्मण वर्गणा का एक भी परमाणु आत्म प्रदेशों में नहीं प्रवेश कर सकता है। जबकि अनुपयोग दशा में - प्रमादग्रस्त स्थिति में राग-द्वेष क्लेश कषायादि के समय असंख्य-अनन्त कार्मण वर्गणाओं के परमाणुओं का आश्रव-आगमन आत्मा में होता है। एक रसी भाव संबंध हाते। दीर्घ कालीन बंध होता है। और कालान्तर में या जन्मान्तर में इन अशुभ कर्मो का विपाक-फल बहुत ही दुःखदायी स्वरुप में भुगतना पडता है। अतः ऐसा प्रयास करें, जिसमें कर्माश्रव,कर्म बंध हो ही नहीं,और उपर से कर्मक्षय ज्यादा हो। कर्मारि-कर्मरिपु जो आत्मशत्रु है,वे आत्मा में प्रवेश ही न करे । ऐसे षड्रिपु प्रमुख है— काम-क्रोध-लोभ-मोह-मद-माया, जिनसे कर्मबंध होता है ।

अतः यहां दो योद्धा है,एक-चेतन जीवात्मा और दूसरा कर्मरिपु-कर्मारि। आत्मा जो कि वर्तमान काल में कर्माधीन स्थिति में संसारी अवस्था मे है,वह मन-वचन-काया के घेरे में रहती है। मन-वचन काया-इन्द्रियादि इसके लिए-साधन-माध्यम स्वरुप है । ये कर्मोका आश्रव कराने में, कर्म बंध कराने में तथा कर्म क्षय कराने में भी सहायक-साधन स्वरुप है। इन्ही के जरीए, कार्मण वर्गणा के परमाणुं आत्मप्रदेशों में आते है। बस इन्हे कैसे रोकना, आने न

देना,ऊपर से इन्हें पुनः बाहर निकालना,निर्जरा करनी,इसके लिए एकाग्रता पूर्वक जागृत-अप्रमत्त रहना खूब जरुरी है। उसमें भी जिन्होनें कर्मक्षय किये है,ऐसे अरिहन्तादि पंच परमेष्ठी भगवन्तो को-उनके वाची मूल मत्र पदों को, अपने शरीर पर स्थापित (न्यास) करना है।उनके साथ-साथ अपनी भावना के वाचक शेष पदों को भी इस तरह न्यास करते हुए स्थापित करके रखना है। जिससे एक अभेद्य किल्ले में एक कवच में सर्वथा सुरक्षित रह सके । बस-फिर एक भी पापकर्म शत्रु अन्दर प्रवेश ही न कर सके। तथा साथ ही साथ पुराने जो कर्मरिपु अन्दर घुसे हुए है, उनको भी क्षय करके बाहर निकालना है अर्थात, कर्म-क्षय कर्म नाश करना है , निर्जरा करनी है। भले निर्जरा कम भी हो,परन्तु नये कर्माणुओं का आगमन नही होना चाहिए इस भाव से यह 'आत्म रक्षा' स्तोत्र की रचना हुई है। इसीको ध्यान रुप में उपयोग में लाकर हम आश्रव करे,आत्म रक्षा करें। ऐसे उद्देश्य को आत्मरक्षा स्तोत्र मे भरा है।

धारणा— अष्टांग योग की प्रक्रिया में-यम, नियम, आसन, प्राणायाम, प्रत्याहर के पश्चात् छट्ठे क्रम पर धारणा का सोपान क्रमशः आता है। ध्यान में प्रवेश हेतु यह प्रवेश द्वार है। धारणा करके फिर ध्यान में प्रवेश करना सुगम रहता है। यहां आत्म रक्षा स्तोत्र के शब्दों में बताई हुई धारणा को अर्थ-भाव से समझकर व्यवस्थित रुप से करना है ।

नवकार महामंत्र के ही नौ पदों का शरीर के विभिन्न अङ्गो पर न्यास-स्थापना करके उसे अभेद्य किल्ले के रुप में ईन्द्र के अभेद्य कवच जैसा 'वज्र पञ्जर' बनाकर समें सुरक्षित रहना है, ताकि एक भी कर्म शत्रु अन्दर प्रवेश कर ही न पाए। इसलिए, इस स्तोत्र का'वज्र पञ्जर स्तोत्र' नामकरण भी किया गया है।अर्थ-भावार्थ समझते हुए पदों के न्यास का विधि क्रम समझकर ठीक वैसे ही करना है; उस प्रकार की धारणा करके तत्पश्चात् ध्यान में प्रवेश करना है ।

आसन—सर्व प्रथम-भूमी शुद्धि आदि शुद्धियों का उपयोग रखते हुए एकान्त,निर्जन, विक्षेप रहित, शान्त स्थान में उत्तर-पूर्व या ईशान दिशा की तरफ मुख करके ऊनी-गरम आसन पर बैठें। सामनें 'आत्म रक्षा स्तोत्र यंत्र या चित्रपट की स्थापना करे। तीन बार पंचांग प्रणिपात (खमासमणे) पूर्वक नमस्कार करके-पूर्ण पद्मासन (या न हो सके, तो अर्ध पद्मासनादि में) में स्थिर बैठें। मेरु दंड (रीढ की हड्डी) सिधी रखते हुए स्थिर बैठकर वज्रपञ्जर स्तोत्र बोलते हुए

महामंत्र के नौं पदों का शरीर पर न्यास (स्थापन) करते हुए अङ्गस्पर्श पूर्वक मुद्रा करते जाइए ।

अर्थ पूर्वक न्यास क्रम—प्रथम पाच बार ॐ का दीर्घ श्वास के साथ उच्चार करें। 'ॐ परमेष्ठी नमस्कार' उच्चार शुरु करें। अरिहन्त-सिद्ध-आचार्य-उपाध्याय साधु आदि पंच परमेष्ठी भगवंन्तों को नमस्कार वाले सारभूत नौ पदों को जो आत्म रक्षा करने वाले है, ऐसे वज्र पञ्जर स्तोत्र का में स्मरण करता हुं ।

'नमो अरिहन्ताणं' प्रथम पद की शिर शिखा पद दोनों हांथो का स्पर्श करते हुए स्थापना करें । अरिहन्त भगवान मेरे मस्तक पर बिराजमान है, ऐसी स्थापना धारणा में करीये।

'नमो सिद्धाणं' द्वितीय पद की मुख के अग्र भाग पर स्थापना करे। सिद्ध परमात्मा मेरे मुख कमल पर स्थित है ,ऐसा विचार करते हुए दोनेा हांथो का मुंह स्पर्श करते हुए द्वितीय मन्त्र पद बोलें ।

'नमो आयरियाणं 'गुरु मन्त्र पद की स्थापना देह के अङ्गो पर करे। दोनो, खभों पर हस्त स्पर्श करते हुए, यह मंत्र पद बोलकर स्थापना करीए संपूर्ण अङ्गो की रक्षा हो ।

'नमो उवज्झायाणं' मंत्र पद बोलते हुए दोनो हाथ आधे सामने करते हुए या खंभे के उपर आगे मुट्ठी बंध करते हुए, हाथों मे आयुध-शस्त्र धारण किये हुए है, ऐसी धारणा बनाइए। जैसे देवी-देवताओं की मूर्तियो के हाथ मे आयुध है, वैसे अपने स्वयं के हाथों मे आयुध कल्पीए।

'नमो लोए सव्व साहूणं' इस पाचवे मन्त्र पद की स्थापना दोनें पैरो पर करीए। दोनो हांथ पैरो पर स्पर्शपूर्वक घूमाते हुए इस मन्त्र पद को बोलते जाइए ।

इस तरह दो भगवान और तीन गुरु स्वरुप पांचों परमेष्ठी भगवन्तों को अपने शरीर के विविध अङ्गो पर धारण किये हैं। १)सिरपर अरिहन्त भगवंत २) मुखमण्डल पर सिद्ध भगवंत ३) दोनो खभों पर आचार्य भगवन्त ४) दोनो हांथो पर (मुट्ठि मे आयुध के रुप मे) उपाध्याय भगवन्त तथा

५) दोनों पैरों पर साधु भगवन्त। इस तरह सिर से पैर या पैर से सिर तक समूचे शरीर पर-सभी अंङ्गो पर पंच परमेष्ठि भगवन्तों की तथा उनके वाचक-महान प्रभावक मन्त्र पदों की स्थापना की है। यह जागृति बरोबर बनी रहनी चाहिए।

६) अब 'एसो पंच नमुक्कारो' छट्ठे पद की स्थापना जमीन पर-करते हुए बोलिए और ऐसी मानसिक कल्पना मन में करीए कि, मेरे नीचे शीला-जमीन वज्रमयी है , अभेद्य-अछेद्य है। नीचे की अधोदिशा में से भी कोई प्रहार या प्रवेश न कर सके। दोनों हाथों की हथेली एक साथ बनाकर आगे-पीछे घूमाते हुए इस मंत्र से शिला को वज्रमय बना लीजिए ।

७)'सव्वपावप्पणासणो' इस सातवें मन्त्र की स्थापना करते हुए उपर से नीचे की तरफ और आगे से पीछे की तरफ चारों तरफ बाहर भी वज्रमय किल्ला है, अछेद्य अभेद्य कवच है। दोनों हाथ एक साथ पूरे उपर से नीचे-तथा बगल मे दाएं से बाएं, आगे पीछे घूमाते हुए वज्रमय अभेद्य कवच की धारणा बनाइए ।

८) 'मंगलाणं च सव्वेसिं ' इस आठवे पद को बोलते हुए अपने-चारों तरफ खाई की धारणा करीए। अपने इस अभेद्य किल्ले के चारों तरफ काफी गहरी खाई है, इस खाई में जलते हुए अंगारे खूब भरे हुए है , जिससे कोई शत्रु सैनिक अर्थात् मोहराजा के सुभट भी अन्दर प्रवेश ही न कर सकें। और अगर प्रवेश करने का दुःसाहस एक भी करे तो इस जलते हुए अंगारों की खाई में जलकर तुरन्त भस्मीभूत हो जाए। दोनों हाथों की तर्जनी अंगुली अपने पीछे से आगे और आगे से पिछे जमीन पर स्पर्श करते हुए, घुमाते हुए, जलते हुए अंगारो से भरी हुई खाई की धारणा करीए।

९)पढमं हवई मंगंल 'महामंत्र के इस नौवे पद के उच्चारण पूर्वक जलते हुए अंगारो में जलकर एक-एक पाप कर्म जल कर स्वाहा हो जाय । मुझे मोह-वासना-कामादि का एक भी अशुभ विचारआ जाए - आश्रव या बंध हेतु एक भी विचार आ जाय तो वहीं स्वाहा हो जाय ऐसा स्वाहा, कर्म दहण आत्मा के लिए शुभ स्वस्ति कल्याण वाची है । उसी से यह श्रेष्ठ पद जानना चाहिए।

इस देह को ढकने के लिए रक्षार्थ वज्रमय कवच बख्तर धारण करने की धारणा बनाइए। पूरे उपर से- सिर से नीचे पैर तक दोनों हाथ घूमाते हुए वज्रमय कवच-बख्तर धारण करने का संकेत सूचित करें । बस,अब आप पूरी तरह सुरक्षित हो,अभेद्य-अछेद्य हो।

पूर्वाचार्यो ने स्पष्ट कहा है कि अरिहन्तादि पंच परमेष्ठी भगवन्तों से सुशोभित -गर्भित इस नवकार महामन्त्र के महान प्रभावक पदों से जो अपनी रक्षा करता है ,उसके शुद्र उपद्रवों का नाश होता है। अतः यह महामन्त्र शुद्र उपद्रव नाशक है। इसके एक-एक पद ऐसे महानप्रभावक है , ऐसे नौ पदों की

स्थापना साधक-ने अपने एक-एक अंगो पर करके कर्मो की सेना के सामने अभेद्य सुरक्षा धारण करली है।

१८ प्रकार के पापों में से बनने वाले ८ कर्मो की कुल १५८ उत्तर प्रकृतियों की कर्म सेना काफी विशाल है, घातक है । जो अनादि काल से आत्मा को कर्म पिंजरे में बंदिस्त बनाकर बैठा है। इस कर्म सेना का मुख्य राजा मोह राजा है। मोहनीय कर्म है। मोहराजा के चार प्रमुख सरसेनाधिपति है ।१. मिथ्यात्व २. कषाय ३. नोकषाय और ४. विषय वासनादि काम। ये चारों भारी आक्रमण कारी है। दिमाग में विचार रुपी कीडा एक बार घुस जाय, तो दीमक की तरह बुद्धि-विवेक सबको खाकर खत्म कर देता है। ज्ञानावरणीयादि अन्य सात कर्म इसके प्रमुख स्वपक्षी मित्र राजा है। और इन आठों कर्मो की अवान्तर प्रकृतियो को १५८ सैनिक है। कर्म सेना एक चेतन जीवात्मा पर इतने भारी प्रमाण में हल्ला करने आती है। आत्मा को किस तरह अपनी आत्मरक्षा करनी? यह एक विकट प्रश्न है। पेचिदा और विकट प्रश्न इसलिए है कि जन्मों जन्म के बांधे हुए अनन्त कर्म तो पहले से ही आत्मा के घर में पडे हुए हैं। जिन्होनें आत्मा पर अपना कब्जा-अधिकार जमा लिया है। आत्मा अकेला है। वह भी संसारी अवस्था में है। संसार यह स्व घर नहीं हैं। आत्मा का अपना स्वधाम तो मोक्ष है ,मुक्तिपूरी है। मुक्तिपूरी का राजा चेतनात्मा है। वहां एक भी कर्म परमाणुं आ जाय तो उसे पता चल जाय। लेकिन क्या करे ? आत्मा आज संसारी अवस्था में-संसार में अर्थात् कर्म के घर में बैठी है। अनन्त जन्मों से इन कर्मो ने जीवात्मा की दबोच रखा है। अनन्त कार्मण वर्गणा के परमाणुओं ने आत्मा के असंख्य प्रदेशों पर भारी कब्जा जमा रखा है। आत्मा के घर में भी कर्म शत्रु छिप-छिपकर बैठे है ,तथा में चारों तरफ १८ पापों की अनगिनत प्रवृत्तियों में पुनः कर्म का ही साम्राज्य है ।अन्दर के कर्म उदय में आकर चूंबकिय शक्ति बढाते हुए बाहर के नए कर्माणुओं को अन्दर खीचंते है। इस तरह आन्तर बाह्य दोनों तरफ कर्मों के दबाव तले अकेली आत्मा दबकर बिचारी दयनीय स्थितिमें आ चुकी है। फिर भी चेतनात्मा अनन्त शक्ति की स्वामी है। ज्ञानादि अनन्त गुणों का उसका खजाना उसके पास पर्याप्त है। समस्या इतनी ही है कि उन गुणों पर भी कर्म के आवरण काफी ज्यादा आ चकुे है। जैसे तेजस्वी सूर्य भी घने बादलों मे आच्छादित हो जाने पर,दोपहर में भी अंधेरा छा जाता है। ठीक उसी तरह आत्मा के उपर कर्मों का आवरण छा जाने पर उसके गुण और शक्ति सब आच्छादित हो जाते है। बस

एक थोडा सा सम्यग् ज्ञान अन्दर से जागृत हो जाने के पश्चात् चेतनात्मा अपने ज्ञान से-अपनी वीर्य शक्ति से इन कर्मो को खदेडने में सक्षम-समर्थ हो जाती है।बस, इसि कार्य को करने के लिए ध्यान की प्रक्रिया है। ध्यान में स्थिर रहकर आत्मा और कर्म इन दोनों महामल्लों के द्वन्द युद्ध का निरीक्षण करना है। और उसमें आत्मरक्षा इस वज्रपञ्जर स्तोत्र से रक्षा करते हुए कर्मारियों के सामने लडने के लिए सुरक्षा कवच-आयुध बख्तरादि धारण करके तैयारी करनी है। वज्र जैसे पञ्जर में अपने आप को सुरक्षित रखना है। अन्त में अरियों का हनन करके अरियों पर विजय पाते हुए विजेता 'अरिहन्त' बनना है। बस इसी की यह प्रक्रिया है।

अन्त में यही कहते है कि.. जो इन अरिहन्तादि पञ्च परमेष्ठी पदों नवकार महामंत्र के पदों से सदा आत्म रक्षा करता है। अर्थात् प्रतिदिन ऐसा वज्रमय पिधान धारण करता है। उसे किसी भी प्रकार का भय रहता ही नहीं है। वह निर्भय-अभय बनता है। न ही कोई-आधि,व्याधि,उपाधि उसे सताती है। कभी भी नही। यह और ऐसा है वज्र पञ्जर स्तोत्र । इन्द्र का अभेद्य शस्त्र है हजारों मिसाइलों से भी अधिक शक्तिशाली है। ऐसे वज्र आयुध का पराभव कोई कर भी नही सकता है ।इसलिए यहां भी वज्र पञ्जर वज्रमय ऐसे अभेद्य पिञ्जरे की धारणा की गई है।

(उपर का सम्पूर्ण अर्थ-भावार्थ और गूढार्थ सही ढंग से २,४ बार शान्ति से पढकर ..समझकर ..मन को भर लें। भावित कर लीजिए,ताकि ध्यान करते समय ज्ञान की न्यूनता न आए।

प्राणायाम— अनुलोम,विलोप की प्रक्रिया से नाडिशोधन प्राणायाम करना है। प्रथम नाडी परीक्षा करके यदि चन्द्र नाडी से बाहर निकलती हो तो उसे दाहिने हाथ का चिमटा बनाकर.. अनामिका अंगूलि से बांधा नासारन्ध्र बंद करें,और दाहिने नाक से ..बहुत ही धिरे धिरे लम्बी गहरी श्वास। अन्दर लेते जाइए । साथ ही मानसोच्चार करते हुए ॐ मन ही मन बोलते जाइए श्वास और ॐ साथ ही साथ चलेंगे । होठ जीभ कुछ भी नही हिलाना है। प्रच्छ्वास छोडते जाइए। साथ ही साथ मानसोच्चार रुप से ह्री बोलते जाइए ॐ पूर्वक श्वास अन्दर लेने मे ३० सेकन्द ,ह्री पूर्वक श्वास छोडने में पुनः ३० सेकन्द इस तरह ५ मिनिट तक करते रहिए। मन की एकाग्रता बढती है । और तन मन दोनों ॐ के शुभ परमाणुओं से

भर जाते है। बिना प्रयत्न के। दूसरे सब विचार सर्वथा बंध हो जाते है। बिना प्रयत्न के।

श्वास निरिक्षण— अब धिरे धिरे पुनः अपनी स्वाभाविक श्वास पर आ जाइए। श्वास सहज स्वाभाविक चल रही है। आपका श्वास के लिए कोई भी प्रयत्न नही है। करना भी नही है। बस जो सहज श्वास अन्दर आ रही है एवं बाहर जा रही है, उसीका निरिक्षण करने पर..मन केन्द्रित करीए। नाक के अग्र भाग पर मन को केन्द्रित करके अन्दर आती हुई श्वास को पूरी तरह दृष्टा भाव से सिर्फ देखते ही रहीए कैसा स्पर्श नाक की आन्तरीक दिवालों पर हो रहा है? अनुभव करीए.. पुनः अपने आप जब श्वास बाहर निकल रही है, तब भी बरोबर देखते ही रहीए (जी..हां.. हवा वायु आंखों से नही दिखाई देती है.. मन ही उसकी संवदेना की अनुभूति करता है। पूरी तरह मन लगाइए। बाहर निकलती हुई प्रच्छ्वास का कैसा स्पर्श है। क्या उष्ण स्पर्श है? उष्णता का प्रमाण कितना है? अनुभव करीए.. । बस, आपको सिर्फ श्वास निरीक्षण करने का एक ही काम करना है। यदि मन फिर कहीं बाहर भाग भी जाता है तो एकाएक कुंभक करके श्वास को रोक लीजिए आप ध्यान देना.. जैसे ही श्वास रुकती है, वैसे ही विचार भी रुक जाएंगे। आपको तुंरत ख्याल आ जाएगा। बस कुछ क्षण मात्र के लिए ही श्वास रोककर अपना ध्यान पुनः श्वास पर लाकर केन्द्रित करीए

बस.. सिर्फ ५,७ मिनिट की इस श्वास निरीक्षण का प्रक्रिया से मन पूरी तरह शान्त हो जाएगा। शरीर संपूर्ण शिथिल हो जाएगा। लेकिन इसी को ध्यान मानने की भ्रमणा मत खडी कर लेना। सीढी चढते समय बीच के विश्राम को ही मंजिल मानना यह भूल है, भ्रमणा है) दूसरे सेकडों विषयों के विचार बन्ध होते ही अब एक ही विषय पर केन्द्रित होकर उसी ध्येय के विषय पर स्थिर विचार प्रवाह प्रवाहीत करीए। ध्यान पूरा रखिए विषयान्तर न हो जाय।

ध्यान प्रारम्भ—'अहं ब्रह्मास्मि' 'अंह आत्माऽस्मि' मैं एक चेतन आत्मा हुं। वर्तमान काल में संसारी अवस्था में कर्माधीन जीव हुं। मेरी आत्म शक्ति अनन्त असीम-अमाप है। कर्मारियों का हनन करने के लिए अपने आत्म वीर्य का प्रस्फुरण कर रहा हुं। बस मुझे कर्म रुपी अरियों का हनन (नाश-क्षय) करके कर्म विजेता अरिहन्त बनना है। आ..हां..मैं अनन्त ज्ञान दर्शन का स्वामी हुं। ज्ञान-दर्शनादि मेरे अनन्त गुण है। इन जड कर्मो का हनन आसानी से कर सकता

हुं। ये कर्म मेरा कुछ भी नही बिगाड सकते है। मैं अनुत्पन्न अविनाशी शाश्वत स्वरुप हुं।

वर्तमान में मैं..वज्रमय अभेद्य किल्ले में हुं। वज्रमय पिञ्जरे में वज्रमय बख्तर कवच धारण करके बैठा हुं। इस वज्र पञ्जर के चारों तरफ बडी गहरी खाई है। जिसमें जलते हुए अंगारे भरे पडे है। एक भी कर्मारिपु अन्दर प्रवेश ही नहीं कर सकते हैं। कोई नए कर्मों का आश्रव संभव ही नही है । मैं सर्वथा निश्चिंत-निर्भय हुं। अब किसी का भय नही है। अभय हुं। आयुधादि धारण करके..मै कर्मारियों के साथ लडने भिडने सुसज्ज हुं। सक्षम समर्थ हुं। अनादि काल से मेरे आत्मप्रदेशों पर कर्म परमाणुओंका संयोग है । एक भी कर्म प्रकृति अनाद्यनन्त कालीन शाश्वत नही है। अरे.. आत्मा की शाश्वत स्थिति अक्षय स्थिति के सामने कर्म प्रकृत्तियों की बंध स्थिति बहुत ही अल्प कालीन है। फिर भी.. इनकी सन्ततियो ने मुझे विगत अनन्त काल से घेर रखाहै। दबोच रखा है। कल्यानि बालियों कम्मो ''कत्थवि बलियों अप्पा'' आत्मा और कर्म इन मल्लो के बीच कभी कर्म बलवान होता है। हां.पिछले अनन्त काल में कर्म ही बलवना होते आए है। बस अब मेरी (आत्मा की) बारी है। अब मेरी आत्मा बलवान है। मैं अनन्त शक्ति-अनन्त वीर्य वाला हुं। मेरी आत्मशक्ति अनन्त,असीम, अमाप है। दूसरी तरफ मैनें वज्रमय पिञ्जर,वज्रमय बख्तर रूप आत्म कवच धारण कर लिया है। अब मैं इन कर्मो को अच्छी तरह निपट लूंगा।

मै पूर्ण रुप सें संपूर्ण सचे जागृत हुं। सावधान हुं।चारो तरफ से कही से भी नए कर्म को अन्दर घूसने ही नही दूंगा। मरे चारो तरफ (अंगारे जलते हुए भरी हुई गहरी खाई है। इसके बीच मैंने वज्रमय विधान ढक्कन अभेद्य कवच धारण कर रखा है। मैं ध्यानस्थ हुं। मेरी अनन्त शक्ति अन्दर से प्रज्वलित हो चुकी है। अब मैं निडर निर्भय हुं। ध्यानाग्नि प्रदिप्त होकर कर्म क्षय करती है। मेरे अनेक कर्मो का क्षय नाश हो रहा है।(बस, मौन पूर्वक आन्तनिरिक्षण करीए .. अन्दर ही अन्दर अनुभूति करीए) शान्त चित्त से अन्तर्मुखी होते ही जाना है। अनुभूति करते ही जाना है। जो हो रहा है..उसे दृष्टा भाव से देखते ही जाईए। और गहराई में सूक्ष्म निरीक्षण

करीए ..बस, करते ही जाईए.. ।विचार रहित स्थिति में स्वयं स्व के दृष्टा बनना है। विषयान्तर न हो इसका पूरा ध्यान रखें । ध्यान की धारा अखण्ड रूप से चलने दीजिए ।दृष्टा भाव से सारी प्रक्रिया देखते ही जाईए।

बडी..अच्छी मात्रा में कर्म निर्जरा होती है ,होने दीजिए। जितने ज्यादा कर्मक्षय होते जाएंगे,उतनी ही ज्यादा आत्मशुद्धि होती जाएगी। आनन्द..ही आनन्द.. परमानन्द..चिदानन्द..। अन्दर कुछ अलग ही प्रकार के अनोखे आनन्द की अनुभूति होती है। आनन्द का अनुभव करते ही जाईए। जहां..तक .. जब.. तक..जितना संभव हो करीए। धिरे धिरे शान्त होते जाईए।

प्रणायाम— पुनः धिरे धिरे दीर्घ प्राणायाम शुरू करीये। बहुत ही धिरे धिरे लम्बी गहरी श्वास भरते जाईये। धिरे धिरे छोडते जाईए। ऐसे पांच से सात राउण्ड करीए।

ॐ कारोच्चार — अब लम्बी गहरी श्वास अन्दर भरकर ॐ का उच्चार करते जाईए ।पांच बार ॐ का उच्चार अ..आ..उ..ओ ..म्.. के क्रम से व्यवस्थित करीए।शान्त चित्त से..देह, स्थान क्षेत्र कालादि का स्मरण करीए ।

धिरे..धिरे.. स्वस्थ चित्त से.. हाथ ऊपर उठाकर..परस्पर हथेली थोडी सी रगड कर.. चेहरे पर हाथ का स्पर्श करीए । स्मित फैलाते हुए हसते हुए चेहरे के साथ आंखें..खोलीए । नमस्कार मुद्रा में सामने स्तोत्र चित्रपट्ट या यन्त्र को आसन खोलकर.खडे होकर नमस्कार करीए। खमासमणे दीजिए।

जी..हां.. यह संवर प्रधान प्रक्रिया थी। निर्जरा तो आप पर निर्भर है। जितनी करेंगे उतनी होगी। लेकिन संवर में चित्तवृत्तियों का निरोध विशेष होगा। पाप रुचि कम होगी । पाप भिरुता बढेगी ।सावधानी और जागृति बढेगी आप सजाग रहेंगे। २,४ बार पढकर अभ्यास करके फिर आगे बढीए।

॥ सर्वमंगलम् ॥

नमस्कार महामंत्र का - जप ध्यान

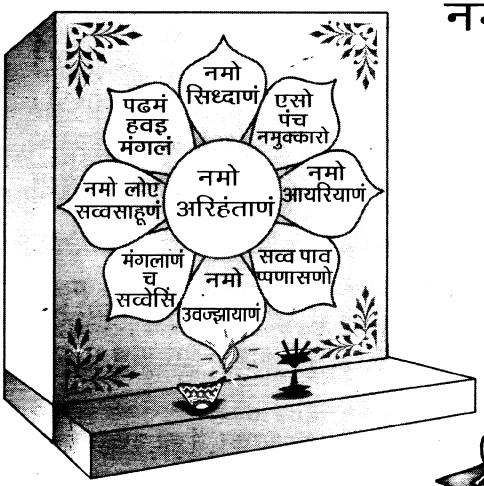

अनादि अनन्तकालीन-त्रिकाल शाश्वत ऐसा एक मात्र महामन्त्र 'नवकार' ही है। चूंकि इसमें किसीका भी नाम नहीं है,सर्वथा अनामी मंत्र है। यदि नाम होता, तो वह किसी एक व्यक्ति विशेष का वाची होता और व्यक्ति तथा नाम दोनों ही कालिक मर्यादा के बंधन में बंधनेवाले है। फिर तो नवकार त्रिकाल शाश्वत नहीं होता,कालिक होता । लेकिन गुणवाची पदोंवाला यह महामंत्र है। अरिहन्त नाम के कोई भगवान नहीं हुए हैं। लेकिन आत्मा के 'अरि' अर्थात् विपरित वृत्तिवाले शत्रु स्वरुप जो राग,द्वेष,काम, क्रोधादि षड्रिपु सब जितने भी है उनका हनन अर्थात् नाश करके जिसने भी अरिहन्तत्व को पाया है,वे सब 'अरिहन्त' भगवान हुए हैं। चाहे वे महावीर हो आदीश्वर हो या सीमंधरस्वामी हो सभी 'अरिहन्तत्व'को पा चुके हैं। अतः निश्चित 'अरिहन्त'भगवान कहलाते हैं। आगे नमस्कार अर्थ में 'नमो' शब्द जोडकर नमस्कार किया गया है अतः 'नमो अरिहन्ताणं'यह मन्त्र बना है। इस गुणवाची मन्त्र के उच्चार से महावीर, आदीश्वरादि अनन्त हो चुके अरिहन्त भगवन्तों को नमस्कार होता है। यदि हम केवल 'नमो महावीराणं' या 'नमो

आदीश्वराणं' ऐसा मन्त्र बनाते तो वह एक मात्र महावीर को ही नमस्कार करनेवाला हो जाता। फिर अन्य सबको नहीं होता, जबकि बीते हुए अनन्त भूतकाल में अनन्त अरिहन्त भगवान हो चूके हैं। अतः बिना किसी का नाम लिए गुणात्मक स्वरूप का पद लेकर 'नमो अरिहन्ताणं' पद का महामन्त्र बनाया। सिर्फ इस सप्ताक्षरी एक पद के मन्त्र से अनन्त अरिहन्त भगवन्तों को एक साथ नमस्कार हो जाता है। ऐसा ही अन्य सभी पदों के बारे में नियम समझना चाहिए। अतः यह अनामी मन्त्र है। हमारी आत्मा भी मूल में अनामी-नाम रहित ही है। कर्माधीन स्थिति में हम नामी हो चूके हैं, और आप जानते ही होंगे कि नाम का तो नाश होता ही है। अतः हमें पुनः अनामी अवस्था प्राप्त करनी ही है, अतः अनामी महामन्त्र का आश्रय लेना उचित है।

दूसरी तरफ संसार में मन्त्रशास्त्र के न महासागरमें जो असंख्य मन्त्र है, उसमें ९९ प्रतिशत सभी मन्त्र दुःख-संकट-विघ्न-आपत्ति निवारण के हैं। सुख शान्ति ऋद्धि सिद्धि समृद्धि प्राप्त करानेवाले हैं। समस्त पापकर्मो का नाश करने की बात कोई मन्त्र नहीं करता है! इप्सित कामित मनोरथ पूर्ति करने-करानेवाले मन्त्रों की भरमार है। जबकि, एक मात्र महामन्त्र नवकार ही ऐसा है। जो कि 'सव्व पावप्पणासणो' सब पाप कर्मो के नाश का लक्ष्य लेकर चलता है। जब तक जड मूल का सर्वथा नाश न हो वहां तक फल कहां से मिलेगा ? अर्थात् पाप कर्म जो कि दुःख की जड है मूलभूत कारण है अतः ऐसे सब पापकर्मो के नाश न हो, वहां तक दुःख का आत्यन्तिक क्षय कहां से संभव होगा? अतः मात्र दुःख नाश की धारणा से मन्त्र जप किया जाय तो कैसे नाश होगा? संभव नहीं है। अतः पाप कर्म जो जडमूल में हैं। उसका आत्यन्तिक क्षय-नाश होना चाहिए और ऐसे भाव से नमस्कार भी ऐसों को ही हो जिनके सब पाप कर्म संपूर्ण नष्ट हो चुके हैं। इस नवकार महामन्त्र में ऐसे पंच परमेष्ठी है, जिनके स्वतः के सब पाप कर्म जडमूल से सर्वथा नष्ट हो चूके हैं। इनके भी नाम का उल्लेख न करते हुए गुणात्मक पद का उल्लेख करके आगे नमस्कारवाची 'नमो' शब्द जोडकर नमस्कार किया गया है। बस इतने मात्र से यह मन्त्र बन जाता है। इतना सरल-आसान यह मंत्र बन जाता है, और अर्थ भाव से गहन मन्त्र है, अतः महान मन्त्र है।

ऐसे महामन्त्र का ताम्रपट्ट या यन्त्र हीरों जडित यन्त्र बनाया जाय और विधिवत् उसकी स्थापना करें । धूप दीप स्वेच्छनुसार लगाएं । वासचूर्ण से पूज्यभाव से पूजा करके पुष्पादि अर्पण करके सामने ऊनी गरम मोटा जाडा श्वेतवर्णी आसन लगाकर बैठें। प्रथम 'अर्हन्तो भगवन्त'आदि श्लोकों से परिपूर्ण भावपूर्वक स्तुति करें। फिर पांच खमासमणें देवें।

संकल्प ☛ जैसा कि आपने ऊपर पढा है वैसे अर्थ का स्मरण करते हुए शुद्ध भाव से मानसिकता बनाकर संकल्प की प्रार्थना करें। हाथ जोडकर संकल्प अभिव्यक्त करें कि''मैं पाप कर्म का सर्वथा क्षय करने के लिए महामन्त्र नवकार का जप-ध्यान करता हुंपंच परमेष्ठी भगवन्तों का इसी लक्ष्य की सिद्धि हेतु जप ध्यान करता हुं।''

आत्म रक्षा ☛ जी...हां..मात्र देह रक्षा नहीं, 'आत्मरक्षा' करनी है। अतः 'आत्मरक्षा स्तोत्र'बोलते हुए अपने शरीर,शिखा, हृदय, हाथ, पैरादि समस्त अंगो पर नवकार के एक एक पद की स्थापना करते हुए एक वीर योद्धा सैनिक की तरह बख्तर कवच नवकार का ही धारण कर लें और अपने चारों तरफ जलते हुए अंगारों की खाई है , इस बीच में सुरक्षित बैठा हुं ,अब कोई पाप कर्म मेरी आत्मा में कहीं से भी प्रवेश नहीं कर पाएगा।

आसन ☛ सर्व प्रथम अर्ध या पूर्ण पद्मासन में स्थिर बैठें । शुद्ध श्वेत वस्त्र ही परिधान करें। दोनों हाथ सीधे दोनों घुटनों पर रखें। हथेली आकाश की तरफ हो, दीर्घ लम्बी गहरी श्वास लेते हुए पांच बार नँ का उच्चार करें।

जप ☛ शंखावर्त-नंदावर्त की पद्धति से १०८ नवकार गिनते हुए जाप करें । यदि न जमे तो शुद्ध स्फटिक की माला से जाप करें। माला दाढी से ऊपर नहीं और नाभि से नीचे न जाय, हृदय से मात्र चार से पांच अंगुल दूर रखकर चार अंगुलिया मुट्ठी बन्ध करने की स्थिति में रखते हुए बीच में माला पकडें। जो तर्जनी अंगुली पर रहेगी और अंगुठे से घुमाएं । दृष्टि नवकार के चित्रपट्ट या यंत्र पर स्थिर रखें। शान्त चित्त से जप करें।

प्राणायाम ☛ जप समाप्ति के पश्चात् (माला रखकर) कुछ देर श्वास परीक्षा करके दाहिने हाथ का चिमटा बनाकर दाढी पर स्पर्श करते हुए रखकर, अनुलोम-विलोम के प्रकार का दीर्घ प्राणायाम करें। अंगूठे से दाहिना नासारन्ध्र और अनामिका अंगुली से बांया नासारन्ध्र बन्द करना आसान रहता

है।जिस नाक से श्वास छूटकर बाहर निकलता था, उसे बन्द करके दूसरी तरफ से बहुत ही धरे धिरे लम्बी गहरी श्वास लेते जाइए,और होठ जीभ हिलाए बिना (आंखे बन्द करके) मन से मानस नवकार का स्मरण करें। श्वास पूरी ली जाय, पूरक करें वहां तक १,२ या ३ नवकार भी पूरे गिने जा सकते हैं।जितने हो, उतने गिने। याद रखें, श्वास लेना और नवकार मानस गिनना बरोबर दोनों एक साथ समान्तर चलते ही रहें।फिर श्वास छोडते समय पहले वाले नासारन्ध्र को बंध करके दूसरी तरफ से छोडना शुरू करें। बहुत ही धिरे धिरे श्वास छोडते जाएं और साथ ही साथ नवकार गिनते जाय १,२या ३ भी हो सकते हैं। जी... हां...कम से कम से ५- ७ राउण्ड इस तरह करते रहें । प्रति २-४ दिन में १-१ राउण्ड की संख्या बढाते रहें। बिना थकान के स्वस्थता के साथ शान्ति से अखण्ड रूप से यह प्रक्रिया जारी रखें। बडी शान्ति का अनुभव होगा। बीच में एक भी विचार नहीं आएगा।

ध्यान ☛ (आंखें बंदे है) श्वास शान्त होती जाय । स्वाभाविक श्वास के आवागमन को देखते जाएं। धिरे धिरे श्वास नासारन्ध्र से अन्दर आती है। उसका स्पर्श कैसा है, अनुभव महसूस करते जाइए। पुनः बाहर जाती हुई प्रश्वास का भी स्पर्श अनुभवते जाइए। पूरा शरीर तनाव रहित है। मन सर्वथा शान्त है। संपूर्णतः चिन्ता रहित है। तनाव मुक्त है। महसूस करीए मन और शान्त होता जा रहा है। आन्तर सुझावों से प्राथमिक चार-पांच मिनिट मन को शान्त करते हुए श्वास पर स्थिर होते जाइए। जैसे जैसे आप श्वास के अनुभव पर स्थिर होते जाएंगे, वैसे वैसे मन और शान्त होता ही जाएगा । बाहरी विचार बिना किसी प्रयत्न के अपने आप बन्द होते जाएंगे।

बस... नमस्कार महामन्त्र के रंगीन चित्रपट्ट को बंद आंखों से मानसिक स्तर पर देखते जाइए। अन्दर ही अन्दर चित्रपट्ट धिरे धिरे स्पष्ट होता दिखाई देता जाएगा। धिरे धिरे और चमकता हुआ तेजस्वी बनता जाएगा। अक्षर मानों हीरों जडित हो, ऐसे चमकते हुए दिखाइ देने लगेंगे। अक्षरों के बीच के रंग भी बडे अच्छे सुहावने लगेंगे। प्रथम अरिहन्त पद में देखिए ... श्वेत सफेद वर्ण दिखाइ देगा । खो जाइए, अरिहन्त के स्वरूप में। भगवान सीमंधरस्वामी (या कोई भी) नव हेमपुष्प पर विचरते हुए दिखाई दे, या

समवसरण में बिराजमान देशना देती हुई मुद्रा में स्थित है, वैसे मानस पटल पर उपसते हुए दिखाई दें। आप पूर्ण प्रसन्नता - आनन्द के साथ अपने आप को अरिहन्त परमात्मा के सन्मुख उपस्थित देखिए। अरिहन्तका वीतरागी सर्वज्ञ सर्वज्ञ-तीर्थंकरमय स्वरूप को और स्पष्ट देखते जाइए।

(७७) तीर्थ दूसरे सिद्ध पद में... लाल रंग के अक्षरों को हीरे जडित स्वरूप में चमकते हुए देखिए। चौदह राजलोक पर स्थित सिद्धशिला आपको दिखाई दे और स्पष्ट देखिए ... अष्टमी के अर्धचन्द्राकार जैसी स्फटिक की सिद्धशिला दिखाई देगी । लोकान्त को स्पर्शे हुए अनन्त सिद्धात्माएं है, यह मानस पटल पर उभरता जाय। प्रसन्नता पूर्वक दर्शन करते जाइए और अन्दर ही अन्दर नमन करते जाइए , अष्ट गुणों का स्वरूप देखिए।

तीसरा पद सूर्य की तरह तेजस्वी और सोने जैसे पीले रंग का हीरे जडित अक्षरों वाला दिखाई दे। जैसे राजा के पश्चात् राजकुमार प्रतिनिधि होता है वैसे ही तीर्थकरों के पश्चात उनके अनुगामी के रूप में आचार्य भगवन्त प्रतिनिधि स्वरूप में देखिए । सुवर्ण कमल पर देशना देती हुई मुद्रा में गौतमस्वामी आदि गणधर भगवन्तों को दखिए ... बस मानस दर्शन करते जाइए , नमन करते ही जाइए।

चौथे पद में हीरों जडित अक्षरों के बीच हरा रंग दिखाई दे। हरे भरे बगीचे के वृक्षों जैसा हरा रंग और गहरा दिखाई दे। उपाध्यायजी महाराज पाट पर बिराजमान है और सामने कई शिष्य ठवणी (सापडा) पर पोथी रखकर पढते हुए दिखाई दे। ज्ञान प्रदाता ऐसे उपाध्यायजी को वाचक-पाठक स्वरूप में देखते जाइए। आनन्द पूर्वक नमन... करते जाइए ।

पांचवे पद में रत्न जडित अश्ररों के बीच श्याम वर्ण दिखाई दे। संसार के त्यागी, पंच महाव्रतधारी त्यागी तपस्वी साधु महाराज को देखिए। विचरते हुए क्या विहार कर रहे हैं, या गोचरी जा रहे है, या कायोत्सर्ग ध्यान में स्थित है और स्पष्ट करते जाइए । आ...हा...हा मोक्ष की तरफ प्रयाण करते दुए, सीढीयों पर चढते हुए... चौदह गुणस्थानक के सोपान चढते हुए दिखाई दे। बडी प्रसन्नता पूर्वक दर्शन करते जाइएय...आनन्दानुभूति करते हुए नमन करते जाइए।

उपरोक्त पांचों परमेष्ठी भगवन्तों को जो अलग अलग स्वरूप में देखा था, उन सबको एक साथ एक पक्ति में देखते हुए.. आप पाचों को नमस्कार करते हुए अपने आप को भी देखिए । यह छट्ठा पद चरितार्थ हुआ दिखाई दे। श्वेत वर्ण वाले हीरों जडित इस छट्ठे पद को देखिए। बस मेरे तो ये ही पांच परमेष्ठी आराध्य है, आधारभूत है, प्राणाधार है। श्रद्धा दृढ करीए।

सातवें पद के हीरे जडित अक्षरों के बीच श्वेत-सफेद वर्ण देखिए। पंच परमेष्ठी भगवन्तों में से जो तेजोरश्मियां - प्रकाश किरणें निकलती है वे आपके उपर पड रही है। जैसे कोई बारिश में स्नान करता है, वैसे आप इन पंच परमेष्ठीयों की प्रकाशराश्मि में प्रकाशित अपने आपको प्रकाशमान स्वरुप में देखिए। उनकी कृपावर्षा में अपने आपको स्नान करते हुए देखिए। आप साधक के रुप में पांचों परमेष्ठी भगवन्तों के सन्मुख बैठे हैं और आग की लपटें आप के शरीर पर से निकलती हुई दिखाई दे। मानों होली जल रही है। आग.. ही आग, ज्वालाएं लपकती हुई स्पष्ट होती जाय..डरिए मत, प्रसन्न होते जाइए। आ..हा..हा.. ये तो मेरे सब पापकर्मों की होली हो रही है, जलकर जन्मों जन्म के सब पाप कर्म नष्ट हो रहे हैं। सचमुच सांतवां पद आज चरितार्थ.. वास्तव में मेरे उपर सार्थक हुआ। बस.. कुछ देर में पांचों परमेष्ठी भगवन्तों की असीम करुणा वर्षा में आग की लपटें शान्त हुई। आप स्वयं को स्वस्थ बैठे हुए देखें। असीम आनन्द के साथ चारों तरफ देखिए। पाप कर्म जो जल चुके हैं, उसकी नीचे गिरी हुई भस्म चारों तरफ दिखाई दे।...सचमुच 'ध्यानग्निना दह्यते कर्म' ध्यान रुपी अग्नि से कर्म जल्कर भस्म हो जाते है। यह सार्थक होता हुआ अनुभव में आया आ हा..हा.... जो पिछले कई जन्मों में, कई वर्षो में नहीं हो पाया, वह आज सार्थक हुआ । आनन्द ही आनन्द...

आठवें पद के अक्षरों को बीच में और चारों तरफ दूनिया भर के मांगलिक पदार्थों का संचय देखिए । कई मंगलकारक वस्तुएं दिखाई देगी। 'सव्वेसिं' सभी मंगलभूत पदार्थो पदार्थो के बीच में ....

नौंवा पद... रत्न जडित अक्षरों में श्वेत वर्ण में देखिए... सभी मांगलिक वस्तुओं के बीच-में मध्य केन्द्र में... सुवर्ण कमल पर रत्न जडित सिंहासन पर यह नमस्कार महामंत्र दिखाई दे। विश्व के सेंकडों मंगल ज्यादा

से ज्यादा शुकन का, विघ्न क्षय का,संकट निवारण आदि का काम शायद करते भी होंगे... लेकिन पापकर्म नाश करने की क्षमता दही, कुंभ आदि किसी प्रकार के मंगल पदार्थो. में नहीं है। सब पापों का नाश करने की वह असीम क्षमता एक मात्र नमस्कार महामंत्र में ही है। इसी से सब पाप कर्मो ना समूल-सर्वथा-संपूर्ण नाश होता है। भूत काल में अनन्त आत्माओं का हुआ है। वर्तमान में हो रहा है और अनन्त भविष्य काल में भी होता ही रहेगा। इसीलिए सभी मंगलों में इसे सर्वश्रेष्ठ प्रथम कक्षा का सर्वोपरि मंगल कहा गया है। सचमुच सही-सार्थक कहा गया है।

मात्र नवकार ही शाश्वत है। ऐसी बात नहीं है। कार्य-परिणाम भी शाश्वत है। सदाकाल जब भी, जो भी ,कोई इन पांच परमेष्ठीयों का शुद्ध भाव पुर्ण नमस्कार करता रहेगा, तब तब निश्चित ही पाप कर्मो का क्षय - नाश करता ही रहेगा। यह शाश्वतता त्रिकाल नित्य है।

धिरे धिरे ..शान्त चित्त से... स्थिर मन से... आनन्द पूर्वक नौ वें पद के स्वरुप को चित्रमय स्वरुप में चारों तरफ सेंकडों मांगलिक पदार्थो के बीच सुवर्णकमल पर रत्नमय सिंहासन पर हीरों से जडे हुए अक्षरोंवाले पांचों वर्णवाले पदों से सुशोभित नमस्कार महामंत्र के चित्रपट को तेजोवलय वाले प्रकाश पुंज के बीच देखते ही रहीए... देखते ही रहीए। दर्शन करते ही रहिए। ''आज मुझे ऐसा महान उपकारक 'नमस्कार महामंत्र'मिला है।'' का उपकार मानते जाइए। बस आनन्द ही आनन्द जब तक यह दृश्य ओझल न हो जाय, तब तक देखते ही रहीए।

अब ध्यान पूर्ण करके उसमें से पुनः बाहर निकलने के लिए पुनः श्वास दर्शन करीए। स्वभाविक आती-जाती श्वास -प्रच्छवास को देखते ही रहीए। जहां तक स्थिरता रहे, वहां तक.. देखिए । फिर धिरे -धिरे दीर्घ लम्बी गहरी श्वास अन्दर लेते जाइए, प्रत्येक श्वास में १,२,३, नवकार बिना होठ-जीभ हिलाए गिनते जाइए । फिर छोडतें समय की प्रच्छ्वास में भी १,२,३, नवकार मानसिक गिनीए। अब.. ऐसे ५ राउण्ड करने के पश्चात् शंखावर्त -नंदावर्त पद्धति से या स्फटिक की माला से १०८ नवकार गिनकर 'सर्व विश्व कल्याण'की प्रार्थना करके,आसन खोलकर उठीए। ५ खमासमणे दीजिए। चित्र पट को नमन करते हुए आनन्द पूर्वक विदाय लीजिए।

॥ 'सर्व मंगल..' ॥

अष्टदल कमलबद्ध

'एकाग्र चिन्तानिरोधो ध्यानम्'— अन्य समस्त चिन्ताओं के अनेक विचारों को आते हुए रोककर एकाग्रता पूर्वक ध्येय के एक ही विषय पर-एक विषयक विचारों में स्थिर होना ध्यान है। जी..हां मात्र विचार शून्य स्थिति ही ध्यान है,बस इनके सिवाय ध्यान है ही नहीं,होता ही नहीं है,ऐसी भ्रमणा में मत रहीए। ध्येयानुसार ध्यान होता है और ध्यानानुरुप ध्येय होता है। फिर ध्येय में ही उपयोग भाव को स्थिर करके ध्याता भी तदाकार बन जाय। इस तरह ध्याता-ध्येय और ध्यान तीनों एकाकार हो, जाय यह समापत्ति ध्यान साधना है।

अनादि अनन्तकालीन त्रिकाल शाश्वत भवोदधितारक और अनन्त आत्माओं का जिससे कल्याण हुआ है, बीते हुए अनन्त भूतकाल में जिससे अनन्त जीवात्माएँ मोक्ष में गई है।अनन्त जीवों ने जिससे अपने सब पाप कर्म धोए है,ऐसे एक मात्र 'महामंत्र नवकार' की साधना, जप, स्मरण, ध्यान आदि अनेक मार्गों से होती आई है। शास्त्रों में 'अष्टदल कमलबद्ध ध्यान'पद्धति में नवकार की ध्यान साधना बताई गई है। मन को स्थिर करते

हुए, एकाग्रता पूर्वक इस तरह ध्यान करनेवाला साधक अनेक पाप कर्म धोकर आत्मा को पवित्र- शुद्ध करता है।

दृश्य चिन्तन— एक कमल का फुल है,जो जल में खिला हुआ है। नीचे कीचड जैसा अशुद्ध अशुचिमय जल है। इसीलिए, इसे 'पंकज'भी कहते हैं। पंक याने कीचड और ज याने जन्मा हुआ; अर्थात् कीचड में से पैदा हुआ पंक ज अर्थात् कमल का पुष्प है। डंठल पर बडी दो पत्तियां फैली हुई है। ऊपर खिलि हुई पंखुडीयोंवाला कमल का पुष्प है। ये ४ मूल दिशा और ४ विदिशाओं में ऐसी ८ पंखुडीयाँ फैली हुई है। मध्यस्थ कर्णिका का केन्द्र है।

जी..हां.. यह संसार भी अनेक प्रकार की अशुचियों से भरा हुआ कीचड-दलदल जैसा है। इनमें से पनपे हुए कमल के पुष्प जैसा यह मानव जन्म है। राग, द्वेष की दो बडी धारा रुपी पत्तीयों में से हमें उपर उठकर पुष्प के रुप में खिलना है। कितने भी हवा के झोखे आ जाय, फिर भी कमल कुसुम नीचे के दलदल-पानी का स्पर्श न करता हुआ स्पष्ट सीधा अडिग खडा है। ठीक उसी तरह राग-द्वेष की धारा से उपर उठकर हमें जलकमलवत् निर्लेप-अलिप्त रहना है, ताकि पुनः इस संसार के अशुचिमय दलदल का कहीं स्पर्श न हो जाय। अशुभ विचारों की अशुचि भी घातक है। इससे अस्पृश्य रहते हुए.. कमल की तरह अडिग-स्थिर रहना है और इस प्रकार की अलिप्तता,एवं स्थिरता लाने हेतु कमल के दल अर्थात् पंखुडीयों पर नवकार महामंत्र की स्थापना करके ध्यान करना समुचित है। आठों प्रकार की दिशा विदिशाआ में दल-पंखुडीयों पर नवकार के एक-एक पद की स्थापना करें। प्रथम केन्द्रस्थ कर्णिका के मध्य भाग में अरिहन्त भगवन्त की स्थापना करें। अष्ट प्रातिहार्यातिशय युक्त वीतरागी अरिहन्त परमात्मा बिराजमान है। जिनका वाचक सप्ताक्षरी मंत्र 'नमो अरिहन्ताणं' है। १२ गुणों के धारक अरिहन्त भगवान है। उत्तर दिशा मे सिद्ध शिला पर बिराजमान सिद्ध परमात्मा है। निरंजन-निराकार है। लोकाग्र लोकान्त भाग में अनन्त सिद्धात्मा-मुक्तात्मा बिराजमान है।अशरीरी अरुपी है। अष्टगुणों के धारक है। पूर्व दिशा की तरह उदित होते सूर्य समान तेजस्वी सूरीश्वर आचार्य महाराज गुरु पद पर बिराजमान है। ३६ गुणों के धारक है। पुनः दक्षिण दिशा में उपाध्यायजी महाराज २५

गुणों के धारक है। पश्चिम दिशा में साधु महाराज है। २७ गुणों के धारक है। नवकार महामंत्र के ये ५ परमेष्ठी भगवन्त मूल-मुख्य दिशाओं में बिराजमान है।

विदिशाओं में..ईशान मे छट्ठे पद में 'एसो पंच नमुक्कारों' की स्थापना करें। १२+८+३६+२५+२७ कुल मिलाकर १०८ गुणों के धारक ऐसे इन ५ परमेष्ठी भगवन्तों को भाव पूर्वक किया हुआ नमस्कार ..दूसरी विदिशा 'आग्नेय' में सातवें पद' 'सव्व पावप्पणासणों' सब पाप कर्मों का नाश हो। आग्नेय दिशा में अग्नि है,जो पापकर्मों को जलाकर भस्मसात-नाश करती है। यही इस महामंत्र का मुख्य उद्देश्य है,फल है। अखिर तो सब पापकर्मों का क्षय-नाश होगा तब ही मोक्ष मिलना संभव है। पाप कर्मों के रहते कभी भी किसी को मोक्ष मिला नही है और मिलेगा भी नहीं। दुःख नाश,विघ्न-संकट नाशक मंत्र तो जगत में लाखों है। लेकिन पाप कर्मनाशक एक मात्र महामंत्र नवकार ही है। नाश भी कैसा.. प्रकृष्ट-उत्कृष्ट कक्षा का नाश होता है। इसलिए 'प्पणासणों'शब्द का पाठ है।

तीसरी विदिशा नैऋत्य में 'मंगलाणं च सव्वेसिं' आठवां पद स्थापित है।विश्व के समस्त द्रव्यादि मंगलों का स्थान है। चौथी वायव्य विदिशा में'पढमं हवइ मंगलं' नौंवा पद स्थापित है। ८ वे और ९ वे पद की मिलाकर एक संपदा बनती है जिसका संयुक्त अर्थ होता है — समस्त मंगलों में यह सर्व श्रेष्ठ-सर्वोपरी प्रथम कक्षा का महान मंगल है। संसार चक्र में परिभ्रमण करते हुए ,विगत अनन्त काल में हुए ,अनन्त जन्मों में अनन्त बार दुःखों का नाश, विघ्नों का नाश, आपत्ती-संकटों का नाश शायद ही हुआ होगा बस नही हुआ सिर्फ पाप कर्मों का नाश। यह जिससें होता है वह महान मंगलकारी है। इसीलिए यह नवकार महामंत्र सर्व मंगलो में महान 'पढमं' प्रथम कक्षा का श्रेष्ठतम मंगल है। इस तरह मुख्य ४ दिशाओं मे ४ पद परमेष्ठी भगवन्तों की तथा ४ विदिशाओं में चूलिका के महिमावाची ४ पदों की स्थापना है। केन्द्रस्थ कर्णिका में प्रथम पद में अरिहन्त परमात्मा है।

संकल्प—उपरोक्त अर्थ-भावार्थ का स्वरुप समझते हुए जप-ध्यान करने के पहले एक शुद्ध संकल्प मन में कर लें । ''आज मैं महामंत्र नवकार का जो भी

और जितना भी जप-ध्यान करुंगा, वह एक मात्र 'सब पाप कर्मो' का क्षय-नाश करने के लिए ही करुंगा। बिना किसी अन्य आशय के प्रकृष्ट रुप से 'सव्व पावप्पणासणो' के लक्ष्य के अनुरुप ही जपध्यान साधना करुंगा।''

क्रम—शुद्ध श्वेत वस्त्र परिधान करके सफेद उनी गरम आसन पर ईशान, पूर्व या उत्तर दिशा की तरफ मुख करके प्रथम महामंत्र की महिमा-गुण दर्शक स्तुति करें।५ बार खमासमणे देते हुए भाव पूर्वक वंदन-नमस्कार करें।

रक्षा कवच—'आत्म रक्षा स्तोत्र' बोलते हुए एवं अङ्गन्यास करते हुए, अपने शरीर के विविध अंगो पर एक-एक पद की स्थापना करते जाइए। और एक युद्ध के योद्धा की तरह वीर योद्धा बनकर सजग एवं सावधान रहें, ताकि कोइ नए पाप कर्म आत्मा में न प्रवेश पाएं। जब पूराने सब पापकर्मोंका नाश करना है, तब बीच में कहीं नएं पाप कर्म न लग जाए, इसके लिए अप्रमत्त भाव से जागृत रहते हुए 'आत्म रक्षा स्तोत्र' बोलते हुए अङ्गन्यास करते हुए नौ पदों की स्थापना अपने अङ्गो पर करें। याद रखिए, इस स्तोत्र का नाम 'आत्म रक्षा' स्तोत्र रखा गया है, देहरक्षा स्तोत्र नहीं। बस समजदार को समजने के लिए इतना संकेत मात्र पर्याप्त है।

प्राणायाम—अर्ध पद्मासन या पूर्ण पद्मासन में या सिद्धासन में मेरुदंड बिल्कुल सीधा रखकर बैठें। प्रथम दाढी के सामने उल्टी हथेली रखकर श्वास परीक्षण कर लें कि किस नासारंध्र से श्वास बाहर निकलती है? बाए नाक से (चंद्र नाडी से) यदि प्रच्छ्वास निकल रही है, तो उसे (अंगुलीयों का चिमटा बनाकर) अनामिका अंगुली के अग्र भाग से बंद करें और दांए नाक (सूर्य स्वर) से बहुत ही धिरे धिरे लम्बी गहरी श्वास लेते रहें। जी..हां.. श्वास अन्दर आ रही है। उसीके साथ, साथ उतने समय तक मानसिक रुप से (होठ और जीभ बिना हिलाए) मानसिक उच्चारण तथा प्रत्येक श्वास करते जाएँ। फिर श्वास लेना पूरा हो जावे पर अंगुठे से दाए नासारन्ध्रको हंद करें और बाए नासारन्ध्र पर से अंगुली हटाकर उसे खोल दे, ताकि श्वास निकलती जाएगी। बहुत ही धिरे धिरे प्रच्छ्वास छोडने से साथ साथ हीं बीजाक्षर मन्त्र का बिना होठ जीभ हिलाए मानसिक उच्चारण करते जाइए। इस तरह प्रत्येक श्वास लेते समय साथ ही ॐकार का तथा प्रत्येक श्वास छोडते हुए हीं का मानस उच्चार

करते ही जाइए। ध्यान रखें..समान मात्रा में,समान समय में दोनों साथ ही साथ चलने चाहिए। श्वास लेने और छोडने को एक राउण्ड कहेंगे और ऐसे एक राउण्ड मे पूरी एक मिनिट या ज्यादा समय लगना चाहिए। ऐसे नौं राउण्ड करें। प्राणायाम के साथ मानसोच्चार को चलने दीजिए। आप देखेंगे, दूसरे विचार आने अपने आप बंद हो जाते हैं। मन शान्त होता ही जाता है। प्राणायाम से स्वास्थ्य को भी काफी लाभ होता है और इन महाप्रभावी बीजाक्षर मंत्रो का प्रभाव प्राप्त होता है।

दीर्घ ॐ कारोच्चार— पूर्व प्रक्रिया में जो प्राणायाम किया था,उसी तरह प्राणायाम करना है। परिवर्तन सिर्फ इतना ही करना है कि प्रच्छ्वास छोडते समय हीं न बोलते हुए,दीर्घ स्वर उच्चार करते हुए ॐकार का उच्चार करें। जैसे श्वास छोडने की शुरुवात करें कंठ से प्रथम 'अ'अक्षर की ध्वनी निकालें। फिर थोडी क्षणों के पश्चात् उसे ही 'आ' की ध्वनी बनाए, फिर दोनों होठ उपर नीचे करते हुए उसे ही 'उ'की ध्वनी बनाए। फिर कुछ क्षणों के पश्चात् होठ पूरे उपर नीचे फैलाकर खोलते हुए 'आ' की ध्वनी बनाए। थोडी ज्यादा देर 'ओ' की ध्वनी लम्बाते जाइए। अन्त में होठ बंद करते करते 'म्' की ध्वनी करीए और अन्त में होठ बंद करने के बाद नासिका से अनुनासिक स्वर 'म्' की ध्वनी निकालते जाइए। इस तरहॐ का उच्चार करना है। पूरी श्वास छोडते समय इस प्रकार ॐ का उच्चार करें। साथ ही एक,एक अक्षर जो पंच परमेष्ठी भगवन्तों का वाचक है, उनका मानस चित्र उपसाते हुए मानस दर्शन करते जाइए। पूरा ध्यान परमेष्ठी भगवन्तों पर रहे और साथ ही साथ ॐ का उच्चार भी होता जाएगा। बहुत ही धिरे..धिरे.. लम्बी गहरी श्वास लेनी चाहिए।ध्यान रखें, श्वास लेते समय श्वास की आवाज बिल्कुल नहीं आनी चाहिए । शान्त रुप से लेते जाइएऔर जब श्वास छोडनी तब तो कंठ से स्वरोच्चार करते हुए छोडनी है। इसमें श्वास लेने में २०-२५ से ३० सेकन्ड तथा छोडते हुए उच्चार करने में भी २०-२५ से ३० सेकन्ड का मिलाकर कुल समय ६० सेकन्ड का या ७०,८०,९०, १०० सेकन्ड का समय बढते हुए अभ्यास के पश्चात् लगता जाएगा। इस तरह एक से डेढ मिनिट का एक राउण्ड होता है। ऐसे कम से कम ५ राउण्ड में ५ बार ॐ का उच्चार करें। यदि आप बिल्कुल

सही ढंग से कर रहे हो तो एके भी बाहरी विचार आना संभव नही है। और धिरे धिरे करते रहने पर थकान बिल्कुल महसूस नही होगी। बंद आंखो के साथ ही करें। मन शान्त होता जाएगा। उद्वेग, चिन्ताए मिटती है।

श्वास दर्शन— आंखे पूर्ण रुप से बंद रहेगी। आसन में पूरी स्थिरता रहे। अब ॐ कार का उच्चार हो जाने के पश्चात् अब धिरे..धिरे..अपनी स्वाभाविक श्वास को देखने पर स्थिर होना है।दोनों हाथ भगवान की मूर्ति की तरह पद्मासनस्थ स्थिति में दाहिने पैर पर रखिए (पेट को स्पर्श न हो) बांए हाथ की सीधी हथेली पर दाहिने हाथ की हथेली रखें। दोनों हाथ की कोनीयों को आगे लेवें बस, संपूर्ण स्थिरता बनाए रंखे । धिरे..धिरे.. जो स्वाभाविक श्वास चल रही है,उसीको देखते रहें। मन को नाक के अग्र भाग पर स्थिर करें। आती हुई श्वास का जो स्पर्श नाक में होता है,उसे देखते रहें..पुनः निकलती हुई प्रच्छ्वास का जो स्पर्श नाक में होता है उसका अनुभव करते रहिए। करीब ५,७ मिनिट श्वास निरिक्षण करें। इसमें मन शान्त होता ही जाता है। उद्वेग, सब शान्त हो जाते है। दूसरे विचार सब बंद हो जाते है। यदि कोई विचार आते है.. मतलब आपने श्वास दर्शन पर पूरा ध्यान नहीं दिया है। पुनः दर्शन अनुभव करतेही रहना चाहिए । अपने अन्य विचार आने रुक सकते है। संबर होता है।

ध्यान— आसन में स्थिर स्थिरासनस्थ रहकर,आंखे संपूर्ण काल बंद रखकर शान्त एवं स्वस्थ चित्तसे ध्यान करना है। धिरे..धिरे.. मन जल कमल परले जाइए। जल में उगे हुए संपूर्ण खिले हुए पंखुडीयों वाले कमल को मानस चित्र पर उपसाइए और स्पष्ट दो करते जाइए ,चित्र में कमल का रंग स्पष्ट होता जाएगा। सुंदर हल्की सी हरी या पीली झायं लिए हुए क्रीमकलर के कमल के डंठल पर देखिए दो बडी पत्तियां फैली हुई है। जो पानी पर तैरती हुई दिखाई देती है। जैसे कीचड में से पैदा होकर पानी की सतह से उपर उठकर बिना पानी का स्पर्श किये हुए कमल का पुष्प कैसे निर्लेप रहता है वैसे ही मुझे भी जलकमलवत् निर्लेप संसार से उपर उठकर बिल्कुल अना सक्त रहना है। राग,द्वेष, का स्पर्श भी न करते हुए सर्वथा निर्लेप रहना है।

कमल पुष्प के केन्द्र की कर्णिका में अष्ट प्रातिहार्यातिशय युक्त अरिहंत परमात्मा को देखिए । ध्यानस्थ मूर्त्ति के दर्शन करीए। राग-द्वेष रहित

वीतरागी, अरियोंका नाश करने वाले अरिहन्त परमात्मा का ध्यान धरिए चित्र उपसाते जाइए।

दूसरी पंखुडीमें जो उत्तर दिशा तरफ है, उसमें श्वेत सिद्धशिला पर लाल रंग की सिद्धाकृति का मानस चित्र उपसाइए। सर्व कर्म को जलाकर लाल-रक्तवर्णी स्थिति होती है। अतःसर्व कर्म रहित सिद्ध परमात्मा मुक्तात्मा का मानस चित्र उपसाकर देखिए।

पूर्व दिशा की पंखुडी पर सूर्य समान तेजस्वी पीतवर्णी आचार्य भगवन्त को मानस चित्र में उपसाते हुए देखिए। सुवर्ण कमल पर बिराजमान होकर प्रवचन मुद्रा मे प्रवचन देते हुए.. भासमान होंगे।

दक्षिण दिशा की पंखुडी में हरे वर्ण की चित्राकृति में उपाध्यायजी महाराज को देखिए। सामनेकई शिष्यों को पाठ देते हुए पढाते हुए का मानसचित्र उपासइए ।

पश्चिम दिशा की पंखुडी में शामवर्णी आकृति साधु की उपासाइए, जो स्वयं ध्यान साधना करते हुए साधक है। ध्यानस्थ स्थिति में संसार के विरक्त साधु को देखिए । इस तरह पांचो परमेष्टी भगवंतों को कमलपुष्प की पंखुडीयों में मानसचित्र उपासते हुए।देखते ही जाइए। अपना स्वयं कादेह भानभुल कर नमोभाव से उन्हे भाववंदन नमस्कार मन ही मन मे करते जाइए।

ईशान विदिशा की पंखुडी में थोडी पीछे है, उसमें नवकार का छट्ठा पद 'एसो पंच नमुक्कारो' लिखा हुआ देखीए। भावमन में इन पांचो परमेष्ठी भगवंतों को मानसचित्र पर लाते हुए नमस्कार करते जाइए।

आग्नेय विदिशा में जो पंखुडी है, उस पर 'सव्व पावप्पणासणो' सातवें पद के अक्षर जो अंकित है, उसे पढीये और अग्नी की आग्नेय दिशा में अपने पाप कर्मों का जलते हुए अनुभव करीए। नैऋत्य विदिशा की पंखुडी में आठवा पद 'मंगलाणं च सव्वेसिं' लिखा हुआ पढीए। जगत के लाखो द्रव्य मंगलों को देखिए। वायव्य विदिशा में जो पंखुडी है, उसमें 'पढमं हवई मंगलं' नववा पद लिखा है, उसे स्पष्ट करते हुए पढीये। लांखों मंगलों में महान भाव मंगल स्वरुप यह नवकार महामंत्र सर्वश्रेष्ठ,प्रथम कक्षा का मगंल है। आपके सामने यह आठ पंखुडीवाला अष्ट दलकमल है इसमे संपूर्ण

नवकार महामंत्र देखते जाइए और स्पष्ट स्पष्टतर देखते ही जाइए। अनुभव करीए कि पांचों परमेष्ठी भगवंतों कों नमस्कार करते हुए महामंत्र नमस्कार को चरितार्थ करते हुए, पापकर्मो का नाश होता जा रहा है। जैसे जलती हुई अगरबत्ती का धुंवा उपर उठता हुआ और भस्म नीचे गिरती हुई दिखाई देती है, ठीक उसी तरह अपने आत्मा से परे कर्म जलकर दूर होते जा रहे है।बस..शान्त एवं स्थिर चित्त से अनुभूति के स्तरपर मानसचित्र पर देखते, अनुभव करते ही जाना है। अबकुछ नही.. स्थिरता लाइए.. स्थिर होते जाइए..ध्यानस्थ हे आप बस अष्टदल कमलऔर उसमें पंच परमेष्ठी, नमस्कार महामंत्र इसके सिवाय अन्यकुछ भी नहीं। विषयान्तर न हो इसी एक ही विषय के भाव, परिणाम स्थिर बने रहे। *ध्यान की दूसरी रीत*— (सबकुछ पूर्ववत् वही हो) अष्टदलकमल को ध्याता,साधक अपने हृदय सरोवर में खिला हुआ देखें। बस सामने कुछ भी नही है, अपने हृदयपर (सिने पर जो खड्डा सा भाग है)उसे ही सरोवर बनाएं, उसी पर कमल खिला है, नीचे दलदल के रुपमें अपने स्वयं के राग,द्वेष,क्लेष,कषाय, कलह रुपी कीचड का स्वरुप हैं। जिसमे से खिले हुए कमल को देखें आठों पंखुडीयां स्पष्ट खुलि हुई फैली है।

कर्णिका के मध्यभाग समान हृदय केन्द्र , अनाहतचक्र में अरिहन्त परमात्मा की स्थापना करें। 'हृदयकमल में ध्यान धरत हुं ' की पंक्ति चरितार्थ होती हुई लगे, अष्टप्रातिहार्यातिशय युक्त अरिहन्त भगवान को अपने हृदय में स्थापित देखें।

अनाहत चक्र से विशुद्धि चक्र तक जिस का किनारा पहुंचा है, ऐसी उपर की पंखुडी में(अरिहन्त के उपर) सिद्ध परमात्मा को देंखे। श्वेत सिद्धशिला पर रक्तवर्णी निराकार स्वरुप में मुक्तात्मा को देखें। तिसरी पंखुडी हृदय के केन्द्र से निकली हुई बाई भुजा की तरह जिसकी नोंक जाती है, उसमें तीसरा पद 'नमो आयरियाणं'का देंखे। आचार्य भगवंत की सूर्यवत् तेजस्वी स्वरुप में स्वर्ण कमल पर बिराजमान आचार्य को प्रवचन फरमाते हुए स्वरुप में देखें। हृदय कमल,अनाहत चक्र से नीचे की दिशा में जाती हुई स्वाधिष्ठान,नाभिकेन्द्र तक की पंखुडी में हरेवर्ण के उपाध्यायजी महाराज की

चित्राकृति उपसाइए। जो शिष्यों को पाठ पढाते हुए पाठक, वाचना देतेहुए वाचक के स्वरुप मे दिखाई दें।

पांचवी पंखुडी को हृदय केन्द्र से दायी भुजा की तरफ जाती देखिए। उसमें स्वयं ध्यानस्थ ,कायोत्सर्ग करते हुए श्यामवर्णी साधु मुनिराज को देखिए। इन पांचो परमेष्ठी भगवंतों के नीचे नवकार महामंत्र के पांच पद अंकित हो।हिरे जडित सुंदर अक्षरो कों हिरे की तरह चमकते हुए देखिए।

अब विदिशाओं में चुलिका के शेष ४ पदों को देखिए। हृदय कमल से बाएं खंबे की तरफ जाती हुई पंखुडी को देखिए ।उसमें महामंत्रका छट्ठा पद 'एसो पंचनमुक्कारो'अंकित हृदय कमल से बाए हाथ की कोनी की तरफ जाती हुई पंखुडी में 'सव्व पावप्पणासणो 'सातवें पद को अंकित हुए देखिए। बस, इन अरिहन्तादि पांचो परमेष्ठी भगवन्तों कों भावपूर्ण नमस्कार करने कें फलस्वरुप सब पाप कर्म नष्ट होते हुए , जलकर भस्म होते हुए लगे, ऐसा एहसास होता जाए।

अब हृदय कमल से निकलती हुई और दाहिने हाथ की कोनी तरफ जाती हुई पंखुडी में आठवे पद 'मंगलाणं च सव्वेसिं' के अक्षरों के चारों तर फ असंख्य द्रव्य मंगल के बाहरी पदार्थों को देखते जाइए और अन्त में हृदय कमल से दाहिने खभे की तरफ जाती हुई पंखुडी में नौवा पद 'पढमं हवई मंगलं' अंकित देखीए।अनगिनत द्रव्य मगंलों के बीच एक मात्र यह पंच परमेष्ठी भगवन्तो कों किया गया भावपूर्वक नमस्कार ही सर्वोपरी सर्वश्रेष्ठ कक्षा का भावात्मक प्रथम मंगल है। बात भी सही है। अनेक द्रव्य मंगल जो मात्रदुःख संकट विघ्नादि का ही निवारण कर सकते हैं। उतनी ही क्षमता उनकी शायद होगी। लेकिन जिस पाप कर्मो की सत्ता वे स्पर्श तक नहीं कर सकता उनका समूल सर्वथा प्रकृष्ट नाश जिस नमस्कार से होता है, वही सर्वोपरी सर्वश्रेष्ठ कक्षा का सर्व प्रथम मंगल है। ऐसा महान मागंलिक महामंत्र प्राप्त होने के पश्चात् अन्य की क्या अपेक्षा करना? व्यर्थ है, निरर्थक है।

इस तरह आठ पंखुडियों वाले अष्टदल कमलकी स्थापना अपने हृदय केन्द्र, अनाहत चक्र पर करें। मूलाधार से निकलते हुए कमल के डंठल को देखिए मणिपुर चक्र में दोनों तरफ दों पत्तियां बाहर निकली हुई, फैली हुई स्थितिमें देखिए। स्वाधिष्ठान चक्र तक, अनाहत से फैलती हुई आती पंखुडीमें

उपाध्याय महाराज के चौथे पदको देखना है। इस तरह हृदयके सरोवर पर यह कमल उदित है, अतः हृदय कमल की उपमा दी गई है।अपने ही अङ्गों पर जब ऐसे अष्ट दल कमलको देखते हुए नमस्कार महामंत्र के पदो की स्थापना करके ध्यान करने की यह प्रक्रिया है।'हृदयकमल मेंध्यान धरत हुं' ये पक्ति सार्थक है। इस तरह स्वदेह का भान विस्मृत करतेहुए स्वशरीरपर ही अष्टदल वाले इस कमल पर नवकार महामंत्रकी स्थापना करके ध्यान करते जाइए, अनुभवते जाइए और उसमें स्पष्टता लाते जाइए।होठ जीभ हिलाना ही नही है।सारा काम मन को ही करनाहै। उच्चार भी नही कना है।मानस धरातल पर सब चलता ही रहेगा।जहा तक परिणामों की स्थिरता रहें, वहां तक ध्यान में स्थिर रहीए।समय की सीमा नही है।पाबंदी नही है।स्थिरतापर सारा आधार है।ज्ञान अनुभूति के स्तर पर आत ही जाय , निरीक्षण सहज होता ही जाय और अधिक अभ्यास और अधिक गहारई मे लेते ही जाएगा।

ध्यान की प्रथम रीत में।बाह्यकमल पर अभ्यास परिवक्क हो जाने पश्चात् ध्यान की दूसरी रीत के अनुसार हृदयकमल पर ध्यान करने का अभ्यास करे जी.हा. मात्र विचार शून्य रहित होना ही ध्यान है ,इस भ्रम मे मत रहीए। अन्य सैकडो विषयो के आते हुए। विचारों कों रोककर निर्धारित एक ही विषय की स्थिरता रखते हुए , उसी विषय के अनुरुपविचारों कों कुछ कालतक करतेजाना ध्यान है। विषयान्तर नहो वहा तकं स्थिर ध्यान है।अतः, ध्यान मे स्थिरता, और स्थिरता पूर्वक ध्यान दोनों अन्योन्य परस्पर सहायक है। अब धिरे..धिरे..पुनः स्वाभाविक श्वास पर निरीक्षण करना शुरु करीए, स्वाभाविक श्वास नासारन्ध्र से अन्दर आ रही है.. प्रच्छ्वास पुनः बाहर निकलती जाती है। विना किसी विशेष के यह प्रक्रिया अखंड रुप से सहज स्वाभाविक चलती ही जाती है। सिर्फ मन को नासाध्र रखते हुए श्वास के आवागमन का निरीक्षण करते जाइए। मन शान्त होता हुआ, निर्विचार हुआ लगेगा।जहां तरयह स्थिरता सहज बनीरहे, वहां तक निरीक्षण करते रहीए। बस.,पश्चात् प्रयन्त विशेष करते हुए लम्बी गहरी श्वास धिरे..धिरे..लेते जाइए.. लेते समय १,२,या ३ नवकार मानसिक गीने जाए .. पुनः धिरे..धिरे..श्वास छोडते जाइए छोजने के साथ साथ भी १,२, नवकार गिनते जाइए सिर्फ ५ राउण्ड इस दीर्घ प्राणायाम के साथ करते जाइए।श्वास

और नवकार दोनों के साथ चलने चाहिए। जी..हां.., आप देखेंगे कि मन बहुत ही शान्त हो जाएगा। दुसरे बाहरी विचार सर्वथा नही रहेंगें।

अब धिरे धिरे लम्बी गहरी श्वास लेते हुए पांच बार नँ का उच्चार दीर्घ रुप से करते रहें। अ-आ-उ-ओ-म् के क्रम से शान्त चित्त से दीर्घ उच्चार करते हुए ॐका स्मरण करते रहें।

अब धिरे धिरे कुछ भी न करते हुए कुछ देर शान्त स्थिर बैठें रहीए। अपने अनन्दर जो उष्मा-उर्जा पैदा हुई है उसका निरीक्षण करते रहीए। आनन्द का अनुभव करीए..।

अन्त में दोनों हाथ जोडकर विश्व कल्याण की प्रार्थना करते हुए ध्यान पूर्ण करीए।

नँ शान्तिः शान्तिः शान्तिः बोलकर दोनों हाथों की हथेली रगडते हुए, चेहरे पर स्पर्श करते हुए हाथ घूमाइए .. आँखों पर से हाथ उतारते हुए हसते हुए चेहरे के साथ आँखें खोलीए। आनन्द का अनुभव करते हुए उठकर पंचांग प्रणिपात पूर्वक ५ खमासमणें देते हुए सन्मुख के अष्टदल कमलबद्ध नवकार को नमस्कार करते हुए बैठें।

सामायिक ली हो तो पारने की विधि करके बैठें।

जी..हां.. सामायिक लेकर विरति में रहकर ध्यान करना विशेष लाभकारी है। सामायिक संवर की प्रक्रिया है। ध्यान निर्जराकारक आभ्यन्तर तप है। निर्जरा करने के लिए पहले संनर करना अपयोगी है। संवर आश्रव का निरोध करता है अर्थात् नये पाप कर्म जो आते है उसे रोकता है। ध्यान के पूर्व सामायिक लेकर शुरुआत करें। तथा ध्यान के पश्चात सामायिक पारकर उठें।

पुनः पुनः प्रतिदिन नियत समय पर शान्ति से यह ध्यान करें इसके अनेक लाभ है। लेकिन सर्वोपरी सबसे बडा लाभ निर्जरा - कर्मक्षय का है। बस, इसी भाव को प्रधान बनाते हुए..ध्याता को ध्येय का लक्ष्य रखकर ध्यान साधना में प्रगति करनी चाहिए। अवरोधों के सामने घूटने टेकने के बजाय आत्मा की अनन्त शक्ति और संसार की स्थिति का विचार करके अखण्डितता-नियमितता- सातत्यता को प्राधान्यता देनी चाहिए।

❊ श्री महावीर वाणी समवसरण मन्दिर ❊

राजस्थान राज्य के पाली जिले के-गोडवाड प्रान्त में फालना स्टे. से बाली होकर बीजापुर द्वारा सीधे -अरावली पर्वतमाला की तलेटी में,नदी किनारे प्राकृतिक सौंदर्य के बीच,शान्त वातावरण में प्रदूषण मुक्त परिसर में १७०० वर्ष प्राचीन ऐतिहासिक ☛ **श्री हथूण्डी राता महावीर स्वामी तीर्थ** में राजस्थान के गौरव समान एक अद्‌भूत समवसरण मन्दिर दर्शनीय है।

श्री थृण्डी तीर्थ का मनोहर विहंगम दृश्य –